(॥२२)

* उस समय कुछ मुस्कराकर राम और लक्ष्मण की ओर देखकर कहा कि तुम ब्राह्मणों के कहने से मौजूद हो। चरण ... छू रहे हो ... मैं तो ... तुम्हारी कीर्ति ... [illegible]

करोड़ों मानव उदर में जन्म कहा था तुम इसके हेतु
करने को प्राप्त योग्य नहीं हो। सातवें जन्म में मैं
तुमसे मिलूँगा। उसी समय मच्छ ही नररूप बहुँ।
साक्षी हैं पृथ्वी का बोझ को हरना था यही तो
केवट है चरण लिये तुम और शेष के अंश ही
लखन है तुम्हारी साक्षी में इसकी मनोकामना
पूरी करूँगा। (मानस के ... [illegible] ... किशोरी
जी की पुस्तिका पृष्ठ 45 से (साभार)। और सातवें
जन्म में भी अभी तुम दोनों के सामने प्राणों
की बाजी लगाये खड़ा है। (२-४) तुम्हीं तो
अहल्या की गति सोचकर मेरे चरण स्पर्श करके
हिचकी थी अपनी उसी अहल्या का उदाहरण
सामने स्पष्ट रूप से ~~सामने~~ रहने कर चरण
पखारने पर अड़ा रहा है।* (क) इसका पुत्र भी
तुम्हारी ही तरह बहुत ही दृढ़ है (ख) तुम्हारे पिता
ने तो तुम्हें दे कर चरण धोये थे और तो
मुफ्त में ही चरण पखारने थोड़े जा रहा है।
(२) लखन और जानकी दोनों की ओर देख कर
मानो कह रहे हैं :— (क) क्षीर सागर में जब यह
जीव कच्छप था। वही तमन्ना लेकर मेरे चरण स्पर्श

के लिये प्रभु [illegible] और परशुराम (लक्ष्मी) लखन
(शेष) के हृदय में ऐ अरन स्पर्श जन रने ही नहीं
लव से इतनी प्रार्थना में अराहा स्पर्श के लिये
लालायित रही। प्रभु जी कई जन्मों के संचित जन
की लालसा पूरी होगी अब क्या कहना। (२७)
विवाह के [illegible] पहले लखन लाल जी पैर धोया
करते विवाह के बाद जब प्रभु आये लखन लाल
स्वयं पाद में जल लिये खड़े थे प्रभु ने
दाहिना पैर बढ़ाया लखन लाल धोने के
बाद किशोरी जी के लिये बांया पैर बढ़ाया
प्रभु किशोरी जी बांया पैर धोती थी तब ते यह
क्रम चालू हो गया लखन के दाहिना और
किशोरी जी बांया चरण धोती थीं। इस [illegible]
सम्बन्ध में कहते हैं कि तुम दोनों के
हिस्से में प्रीति एक एक चरण धोना पड़ा
हुआ प्रभु जी यह दोनों चरण धोने की
इच्छा थी। मुख से मांगा था है। भई तुम
दोनों एक अधिकारी हो यह तुम दोनों
का अधिकार मेरी मोहर छाप लगाकर लेना
जा रहा है (संत विनीत जी की पुस्तका पृष्ठ ३)

(११२५)

(५१) यह इसके लिये प्रभु के चरणों की बाज़ी लगा चुका है और यह तो प्रभु ने [illegible] मुझ से भी बढ़कर चतुर निकला (५२) दोनों बड़ा मैं [illegible] ते प्रभु भी कहते हैं (५३) भक्त तो मुझे बहुत मिलते हैं किन्तु ऐसा अनुरूप भक्त कोई नहीं मिला (५४) अब मैं इसे प्रसन्न करने की आज्ञा देता हूँ तुम दोनों की क्या राय है? — भला भगवान भक्त पर कृपा करना चाहें तब भागवतों के आचार्य एवं आचार्यों कैसे बाधक हो सकते हैं वे सो भी इस आनन्द में शामिल हो गये॥ कहीं प्रभु ने कुछ-हल्ला प्रभु के श्री चरणों को [illegible] रास्ता [illegible] हो जाते हैं तो इस अनुपम [illegible] को [illegible] अधूरी ही रह जायगी और मेरे प्रबन्ध का रहस्य प्रकट हो जायगा। [illegible] एवं करुणा निधान की करुणा की बाढ़ आज उमड़ रही है [illegible] कृपासिन्धु प्रभु कृपा करते [illegible] का समुचित [illegible] चाकर मुस्करा कर प्रभु ने माथा फेर कर केवट को यह दर्शाते हैं कि मैं तुम्हारी अटपटी बातों से बाध्य [illegible] हो जाता हूँ॥ इसकी बातें सब [illegible] के ही भला है। यह [illegible] फैसला था।

होने की आशंका न हो ताकि प्रसन्न हो
प्रभु मुस्करा कर अपना मन समर्पण करते
हुए कहते हैं कि अरे पगले! ऐसे क्या कर रहा है
तेरी नाव कहीं नहीं जा सके उसके लिये
अपनी तसल्ली के लिये जो करना चाहे कर
ले। इस पर भी दिवाना तो चुपचाप ही
खड़ा है जब तक प्रभु अपने श्री मुख
से चरणों को धोने पखारने की स्पष्ट
आज्ञा नहीं देंगे तब तक अपने मन से
पखारेगा ही नहीं उसे तो महाराज की स्पष्ट
आज्ञा ही चाहिये उसके मनोभाव को पूरी
तरह से जान कर अन्तर्यामी प्रभु स्पष्ट
आज्ञा दे देते हैं जल लाकर पैर पखार ले।

कृपासिंधु बोले मुसुकाई। सोइ करु जेहिं तव नाव न जाई॥
बेगि आनु जल पाय पखारू। होत बिलंबु उतारहि पारू॥ (२-१०१)

यहां प्रश्न उठता है प्रभु को इतनी उतावली क्या
लगी थी? होत बिलंबु क्यों कहा – इस शंका का समाधान
प्रवक्ता गण कई प्रकार करते हैं उनमें से कुछ ये हैं:–

(१) प्रभु केवट से नाव मांगते हैं उसके ठीक पहले ही
तुलसीदास जी लिखते हैं "बरबस राम सुमंत्रु पठाए

सुरसरि तीर आप प्रभु सब आप हूँ जबरदस्ती उसकी इच्छा के विरुद्ध ही तो सुमंत को भेजा है न अतः आँखें उठती हैं सुमंत लौट के आ गये अथवा कोई आकर यह समाचार दे दे कि सुमंत रास्ते में ही विक्षिप्त होकर गिर पड़े हैं वह भी प्रेमी भक्त ही है ऐसे ही हाल में न सकते ही बनेगा। (2) आज पैदल यात्रा का पहला ही दिन है, लम्बा रास्ता तय करना है दिन चढ़ता चला जा रहा है देर होने से किशोरी जी को कष्ट होगा कारण धूप कड़ी हो जायगी* (3) मेरा तो यह विचार है कि मेरे केवट का मान बढ़ाने की इच्छा से निहोरा करते हुए प्रभु ने ऐसा कहा है। प्रभु कह रहे हैं देर हो रही है जल्दि (जल्दी) से जल लाकर मेरे चरणों को जी भर कर पखार ले और जो कुछ करना चाहे कर ले आज तुझे पूरी छूट है (प्रभु अन्तर्यामी हैं उसके हृदय में संजो कर रखी हुई सारी लालसाओं को पूरा करना चाह रहे हैं)।

अपनी मुराद (मनोरथ) सब तरह से पूरी करने के लिये प्रभु की इतनी स्पष्ट आज्ञा पाकर केवट बाग-बाग हो गया, आनन्द विभोर हो

* प्रभु काम में देर नहीं चाहते हैं जल्द नहीं करते विलम्ब हो जाय।

सुरसरि तीर आप सब आप ही जबरदस्ती उसकी
इच्छा के विरुद्ध ही तो सुमंत को भेजा है न अतः
आशंका उठती है सुमंत लौटे हैं आगे अब
कोई आकर यह समाचार न दे दे कि सुमंत रास्ते में
ही विक्षिप्त होकर गिर पड़े हैं वह भी प्रेमी भक्त ही
हैं ऐसे ही हालतों में न रुकते ही बनेगा। (2) आज
पैदल यात्रा का पहला ही दिन है, लम्बा रास्ता
तय करना है दिन चढ़ता चला जा रहा है
देर होने से किशोरी जी को कष्ट होगा, कारण धूप
कड़ी हो जायगी।* (3) मेरा तो यह विचार है कि भक्त
केवट का मान बढ़ाने की इच्छा से विलम्ब करते
हुए प्रभु ने ऐसा कहा है। प्रभु कह रहे हैं देर हो रही
है जल्दि (जल्दी) से जल लाकर मेरे चरणों को जी भर
कर पखार ले और जो कुछ करना चाहे कर ले अब
तुझे पूरी छूट है (प्रभु अन्तर्यामी हैं उसके हृदय
में संजो कर रखी हुई सारी लालसाओं को पूरा
करना चाह रहे हैं)।

अपनी मुराद (मनोरथ) सब तरह से पूरी
करने के लिये प्रभु की इतनी स्पष्ट आज्ञा पाकर
केवट बाग-बाग हो गया, आनन्द विभोर हो

*शुभ काम में देर नहीं चाहिये क्योंकि कहीं कष्ट
हो जाय।

गया मानो मरने को अनुकूल मिल गया। प्रभु की
इतनी विशाल जनरंजनता देख प्रेमाश्रु उमड़
पड़े आंखों की छोटी सी डिबिया में समाते से
और उसकी कृतज्ञता बताते हुए बह चले। सोच
रहा है मन कि प्रभु तपस्वी वेश में हैं अतः
धातु मूर्ति का स्पर्श कराना तपस्वी-मर्यादा के
विरुद्ध होगा, घर से परिवार को भी बुलाना है कठौती
ही ले आऊंगा तो परिवार भी आ जायेगा और
चरण-स्पर्श से उड़ेगी तो कठौती ही उड़ेगी, जिस
अहल्या इस बात को जानकर .. पत्थर ही उड़ेगी अगर *
नाव जैसी रहेगी जिस में प्रभु का पार कर अपना
कौशल निबाह सकेगा (यह उसकी चतुरता है) अतः
प्रभु से विनती किया प्रभु जरा ठहरिये मैं घर से
दौड़ कर कठौती ले आता हूं। अपनी पत्नि और
सन्तान को जोर से पुकारता हुआ हांफता
हांफता घर पहुंचा और कठौती सहित सपरिवार
आ पहुंचा।।

अब तक तो श्री राघवेन्द्र सरकार की
जनरंजनता की वृष्टि हो रही थी अब उनकी भक्त
वत्सलता की वात्सल्य प्रेम-सरिता का अलौकिक
सुखद प्रवाह चालू होने जा रहा है—
* मेरी जीविका उपार्जन में सहायक भी होगी

जिस प्रकार माँ अपने अबोध बच्चे की हरकतों
का आनन्द लेती है और मुस्क मुस्क कर उससे
बातें करती रहती है यहाँ केवट चरण पखार
पखार कर विलम्ब कर रहा है और जगत्पिता
प्रभु मुस्क मुस्क कर ~~कु~~ बहाना लगा लगा
कर उससे बातें कर रहे हैं। इस बातों के
बीच में सोचा कि केवट ने एक युक्ति
ढूंढ ली है अपनी पगड़ी पर प्रभु के चरणारविन्दों
का स्पर्श करवा लूँ ताकि पगड़ी तो हमेशा
सिर पर बाँधूँगा ही और प्रभु चरण स्पर्श के
कारण प्रभु की पनही सम सौभाग्य पायी हुई
यह पगड़ी पनही सम मेरे शीश पर सतत रहेगी
यानि प्रभु-चरण कमल ही रहेंगे। दूसरा यह
है कि सम्भव यह कठोर यह प्रभु का स्पर्श
इस प्रकार अहल्या का उद्धार हुआ है
से हल्का हो गयी किस तरह उन कर
कमलों को अपने सिर से स्पर्श करा लूँ तब
मेरे अति कठोर हरकतें भी हांथो नष्ट
और मेरा उद्धार हो जायगा।
हो जायेंगे। इत्यादि विचार करता हुआ
केवट कहता है ऐसा जल भर कर प्रभु
के निकट आकर अपनी स्वस्त हो अपनी पगड़ी लिया।

कर कर जोरि कर अनुनय करता है। प्रेमी अपने
आराध्य का एक पैर उठा कर कठौते में रखने जा रहा
है कुछ क्षण एक पैर के बल खड़ा रहना होगा
और न जाने अतः मैं हे सिर के ऊपर अपने
कर कमलों का सहारा ले लेवें कृपा करें।
दूसरे ही क्षण प्रभु के कर केवट के सिर पर
हैं प्रभु सम्मति पा केवट के चरण कमल
पकड़ लेता है और भावावेश में उसके
दृग-नीर चरणों का अभिषेक पाते हैं। कठौते
में रख कर गंगा जल से प्रभु के मल मल कर
वह प्रभु पाद प्रक्षालन करता है। आनंद उमंग
और अनुराग तीनों ही उमड़ कर उसे पुलकित
पागल बना डालते हैं। बार बार धोता ही जाता
है "अति आनंद उमगि अनुरागा। चरण
सरोज पखारन लागा"। ("लागा" से झलकता है
कि बहुत देर तक धोया।) फिर इस बहाने से
कि कहीं चरणों की रेखाओं में धूल छुपी तो
नहीं रह गयी पैर उठा कर पागल की भांति निरख
रहा है निहारता है, चला जा रहा है। [illegible]
हो कर दूसरे चरण भी इसी भांति धोता है

अभी तो [illegible]
[illegible]

सुरसरी कह उठी धन्य धन्य हो हे केवट
बहुत बर्षों से इन चरणों से बिछुड़ कर शिव
की जटा में घूमती रही और पृथ्वी पर आ
पड़ी पर आज तुमने इन्हीं चरणों से फिर
मिलन करा दिया। दोनों चरणारविन्दों
को धो धोकर अपनी पगड़ी पर रखता।
[illegible]
हाथ में और चुप-चाप खड़ा हो कर श्री
मुख माधुरी का पान करने लगा। प्रभु बोले
[illegible]
उठो "अरे भाई अब धो लिया। अब तो चल"
कर बोला "प्रभु जरा जलपान तो करने दो"
प्रभु बोले "भाई वह भी कर लो" चरणोदक पान
कर फिर खड़ा हो गया। फिर प्रभु बोले पुन
तो चलो अब विनीत भाव से बोला "प्रभु
तो यह उपाधि अंगूठी ही तरा है।
अपने पत्नि की ओर इशारा कर बोला।
प्रभु यह उपाधि अंगूठी तो अभी प्यासी ही
है। मैं आपकी प्रजा हूँ तो हे आप अपने
अंग (किशोरी जी) का अपमान कर दें अब बोली
छोड़ कर नहीं चल पड़े तो सरकार इस प्रजा
को भी किंचित अनुग्रह दिलें" चातुराई पर

मुस्का कर प्रभु के अंगुठा छु दी। अपनी प्रीति
का परिचय कर फिर खड़े हो गये। प्रभु के
पुछने पर इन्द्र कर्ण खड़े हो। उन्होंने निवेदन
किया "प्रभो! माता पुत्र के सन्तान पर
बहुत होती है यह अपने संतानों को छोड़ कर
अकेली कैसे तरे। अम्बरीय हो प्रभु ने
अम्बरीय दी तब केवट ने सारी सामग्री को एक
एक करके चरण धो से पिलाया फिर निकट हो
गया। प्रभु ने कहा भाई अब क्या बचा रहा है
जल की सा छोड़ा प्रणाम करते हुए निवेदन
किया "प्रभो मैं कर्जदार हूं। कई प्राणी
पास से लाभ के लिये हैं अम्बरीय हो तो चरणोदक
से तरफ से कर अपने पितरों को तार कर यह
कर्ज चुकाऊं" इस चतुराई पर प्रसन्न हो
प्रभु बोल उठे मेरे रामदास! ठीक ही है एक
सुकुल संतान सात पीढ़ी के पितरों को तार देता
है। अम्बरीय या केवट ने अति प्रसन्न हो पितरों
का तर्पण किया चरणोदक से करके सात पीढ़ी
के पितरों को तार दिया। सब को तार कर वह
बड़भागी केवट कर जोर कर प्रभु से निवेदन

करने लगा "प्रभो! आपके चरणों से फिर धूल न लग जाय अतः आप मैं आपको अपने कंधों पर बैठा कर नाव पर चढ़ाने जा रहा हूं।" अतः आप मेरे कंधों पर आरूढ़ हो अपने दोनों दिव्य पतित पावन पादारविन्दों को सामने लटका कर मेरे सिर को दोनों करों से कस कर पकड़े रहें ताकि गिर न पड़ें। त्रैलोक्य को इशारे पर नचाने वाले प्रभु आज इस दिन वाले भक्त के इशारे पर कठपुतली की तरह नाच रहे हैं। प्रभु सामने पैर लटकाये हाथों से केवट का सिर पकड़े केवट के कंधों पर सवार हैं। और केवट की किलकारी पर प्रभु [illegible] किशोरी जी उसकी पत्नि के कंधे पर और लखन लाल इसके ज्येष्ठ पुत्र के कंधों पर आरूढ़ हैं। केवट ने अपने द्वितीय पुत्र से मंगवा कर पगड़ी अपने सिर पर बांध ली। केवट की सारी मुराद [illegible] पूरी हो। केवट के इस अद्वितीय सौभाग्य की सराहना करते हुए धन्य धन्य ध्वनि के साथ नभ से देव समूह ने पुष्प वृष्टि की। इस

अन्होंने अपने हृदय का दर्शन करने आकाश
में सूर्य और मेघ के बीच बदले दर्शन
करने की होड़ लग गयी। सूर्य का दावा था
कि मैं राजा हूँ, मेघ (बादल) का दावा था
बलवान हूँ एवं रोग होने के कारण
छुपा सकता हूँ। मेघ आकाश में छा
जाते हैं सूर्य को ढक लेते और कभी सूर्य
बादलों को चीर कर निकल आते हैं। किन्तु
हे पवन देव ने पंच बनकर फैसला करते हुए
दोनों को अलग अलग कर दिया ताकि
दोनों एक साथ ही दर्शन का लाभ लूट सकें।
अजब सुख है भगवान और उपस्थित
भागवतों के नेत्रों से प्रेमाश्रु बह चले।

अब सन्तों के सब अपनी मनोकामना पूरी
करने की ही धुन में लगा हुआ था सारी कामना
सोलहों आने पूरी कर अब अपने दिल के
राजा राघवेन्द्र सरकार ~~को~~ श्री राम को
जगन्माता भागवतों की आचार्य रूपा श्री सीता
जी एवं भागवतों के आचार्य रूप श्री लखनलाल
को अपने रूपी नौका पर विराजमान पाकर

अपने हृदय के प्रगाढ़ प्रेम को लिये अपलक माधुरी का पान कर रहा है प्रभु की इस झांकी ऊपर पर पुलकित हो रहा है किन्तु उस पार पहुँचते ही प्रभु तो चले जायेंगे फिर विरह ही विरह ही रह जायेगा इस आशंका से दुखित हो ज्यादा से ज्यादा प्रभु के पास रह सके इस उद्देश्य से शनैः शनैः नाव खेने का निश्चय कर प्रभु के सम्मुख बैठ धीमी धीमी गति से नाव खेने लगा और मन ही मन इस हृदय का आनंद लेने की इच्छा है अपनी गति एकदम ही धीमी कर दी लगा (केवट स्तुति मधुर है मधुर तान में गाने लगा। प्रेम मस्त है प्रभु सहवास से और भगवान मस्त हो रहे निज जन की मस्ती में):

"आज मेरि नाव, राम आये पावना।
साँवली सूरत, कोटि काम लजावना ॥१
मनहर सूरत, जाकी सब जग लुभावना
भव का धन का, भ्रम धाम जो छुड़ावना ॥२
रिषी मुनि जोगी, जाकी करे ध्यावना।
रिपु भी जाकी, बैर भाव करे चिन्तना ॥३

समदरसी, ओ अखिल त्रिभुवन कहावना।
रिपु और रागी, समभाव ओ तारना॥४
कृपा किन्हि, मैं सम निच पर प्रभु उपकारना।
पयादि अपकार, अप्रभव सैंस सह पाविना॥५
सम्मुख देख, देह सुध बुध मैं भुलावना।
स्वागत सत्कार न कर, मुढ जिस चलावना।
रखड़ी राखना, दियो न औ चित्त उदास हो (६)
तंग किया, प्रभु रोस न कर पग धुलावना।
चरणोदक पिला, मम परिवार तारना (७)।
तरपन करना, प्रभु मम पितर तारना॥८
प्रभु जन्म जन्मांतर पाप, किये मुझे चलना।
डगमग, मम नैया डोले, डुब जावना।९
करजोर बिन्ति करूं, करना सह निहारना।
अरज करुं प्रभु, मेरि किस्ति पार लगावना॥(१०)
मम चातकं हिया, बना प्रभुजी पावनी।
उस पर, हरदम भुलो जी, पतित पावना॥
इस प्रकार भावावेश में अपनी त्रुटियों के लिये क्षमा याचना करता हुआ, अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हुआ नाचौं नाचौं प्रभु के सम्मुख खड़ा है। प्रभु उसकी चतुराई पर प्रसन्न हो
रहे

हो रहे हैं। अन्ततः नाव तो उस पार पहुँच गयी है
और प्रभु ससमाज उतर कर खड़े हैं केवट उतर
कर साष्टांग दंडवत कर रहा है। ~~दंडवत~~
~~करने से~~ प्रार्थना के बाद दंडवत
किया जाता है यह प्रकार है अभी अभी केवट
प्रार्थना के पद गा चुका है प्रभु बिदा
होंगे अतः दंडवत कर रहा है किन्तु साथ
साथ यह भी प्रथा है दंडवत करने से ये जो
लोग बकसीस दिया करते हैं प्रभु राजा हैं
यह केवट उनकी प्रजा है। हालांकि प्रभु ने
और इस केवट को दिया अब तक किसी को नहीं दिया
फिर भी प्रभु को संतोष नहीं है एवं यह भी
सोचा शायद इसके हृदय के किसी कोने में कुछ
लेने की चाह न छुपी हो ऐसा सोच कर देखा गया
अथवा ऐसे भाव की स्मृति ही दिलाना चाहते
हों प्रभु के हृदय में कुछ देने की इच्छा
उठी — "प्रभुहि सकुच ...... न कछु देई।।" उधर
वनवासी हैं पास में कुछ है नहीं जो दें इसके
अतः संकोच करके सोच वश हो गये
लक्ष्मी पति भगवान। चारों तरफ [illegible]

सीता रूप में लक्ष्मी जी खड़ी हैं। पति के
हृदय के भाव को तुरत ताड़ गयीं। चरण
कर कमल अँगुठी पर पहुँचा और पर
अंगुली पर से उतर कर प्रभु के सामने
सीता जी के कर कमल में उपस्थित हुई
क्षण भर भी नहीं लगा — यह है आदर्श
अर्धांगिनी जो पति का संकोच और सोच
समझ सकी। प्रभु ने वह मणि-मुंदरी केवट की
ओर बढ़ाते हुए कहा यह उतराई लो पर
केवट ने नहीं ली। सोचा शायद लखन से
डर रहा हो अतः प्रभु ने लखन को दी। लखन
ने बहुत कहा पर केवट ने स्वीकार नहीं
किया* तब प्रभु सीता को दी कि शायद वह
यह संकोच कर रहा है तपस्वी की पत्नि
की अंगूठी देखी पड़ी और पति या देवर
के हाथ से नहीं ले रहा हो। तब जगन्माता
ने बहुत कुछ समझाते हुए चेष्टा की पर
उस पुरन काम केवट ने किसी भी तरह
लेना स्वीकार किया ही नहीं और त्राहि
माम् त्राहि माम् करता हुआ प्रभु के

* कहेउ कृपाल ---- प्रभु कुछ नाहें। 'बहुत कीन्ह प्रभु
लखन सीयँ नहीं कछु केवट लेई'

(1.1.38)

चरण कमलों को पखारता हुआ केवट के मार्मिक शब्दों में उपरोक्त शंकाओं का समाधान करता हुआ फूट पड़ा।

प्रफुल्ल चरन ह्रदय पाहि पाहि रघुराई।
विदय किन्ही केवट नयनों नीर बहाई ॥१
प्रभु आज मेरि बेर क्यों धरि निठुराई।
नाता तुम से जोड़ चुका आई आई ॥२
प्रथम कौल कर चुका लेऊँ न उतराई।
बजनक मैं हा तो कर्यो न रघुराई ॥३
सत्य प्रतिज्ञ मैं ने प्रभु कहा तुम्हें भाई।
सत्यसंध तुमने सम्बन्ध स्विकारा भाई ॥४
सुरसरि तीर क्यों झुककर रहे हो भाई।
सो विरुद्ध लुटाने को न ठालो भाई ॥५
केवट केवट से लेवे न उतराई।
कलेया ठेठेरे से लेवे न भलाई ॥६
नाउ नाउ से लेवे न बाल कटाई।
धोबी धोबि से लेवे नहीं धुलाई ॥७
मजदुर मजदुर से कभी न ले मजदूरी।
सजाती से कोई न लेवे मजदुरी ॥८

नारी जात का तं तोड़ दे उतराई।
हलकाइ जात मैं न कर दे उतराई ॥९
प्रभु दर्शन बाद भोग इच्छा न रघुराई।
माया फेर मुझे ठगो मत रघुराई ॥१०
अजामिल तार सकुल तर चुका भाई।
जन्मांतर दोस [illegible] दुख जलन नासी साईं। ११
रिनि अपने को जदि समझते हो भाई।
मैं भी मेरी बेर बन जाना भाई ॥१२
मैं मांझी इस गङ्ग तीर का हूं भाई।
तुम हो केवट भवसागर के गुसाईं ॥१३
पतवार मम हाथ तीनों छोड़ूं भाई।
मेरी पतवार तुम सम्हालना भाई ॥१४
मैं ने है तुम्हें गङ्ग पार किया भाई।
तुम मुझे भवसिंधु पार करना भाई ॥१५
तव माया वस मैं बिछुड़ता हूं भाई।
जिन कोल बस पर तुम न बिछुड़ना भाई। १६
मैंने है तुम्हे कन्धे उठाया भाई।
तुम मुझे चरनन लिपटा लेना भाई ॥१७
दर्स दे तर्फन मेरि मिटा देना भाई।
ब्याज सहित रिन यों चुका देना भाई। १८

भरत पर कृपा करन जब फिर होंगे भाई।
तब सहर्ष लखन गए जो कुछ होंगे बधाई॥
तथास्तु निर्मल भक्ति दे चल पड़े रघुराई।
सुखक रहा केवट बिरह तीर बहाई॥२७

धन्य धन्य कह राम से सुर सुमन बरसाई। (बरसायें भी)
भक्त जनन को यह चरित्र सुंदर सुखदाई॥ (सुखदायें भी) २८

अब तक तो मैं नहीं जानता और वात्सल्यता ही थी अब 'तथास्तु' कह प्रभु ने अपनी कृपा भी दर्शायी। अतएव श्री प्रभु अच्छी तरह जानते थे केवट पुरनकाम है उस का प्रेम पुरा था निष्काम है पर अपने मन की इस निष्कामता को जग के सामने प्रगट रूप रखना ही प्रभु का ध्येय था इस उतराई देने में। कितना चतुर है केवट, बधाई मांग कर वनवास अवधि होने पर दर्शन मांगा यही नहीं इसके पहले अपनी जीवन अवधि पूरी होने पर यानि मृत्यु बेला भी प्रभु दर्शन मांगा और तथास्तु कह अपनी स्वीकृति प्रदान की अतः अवध फिरती आने से पहले "सुरसरि नाघि जाइ तब आयो। उतरेउ तट प्रभु आयसु पायो (२-१०२) गंगातीर पर उतर कर केवट को दिये वचनों का पुरा किया।

भवसागर को मल्लाह के डोंगा पार करने के पहले ही डोंगा के मल्लाह केवट की नैया चरणोदक पी कर भवसिंधु पार हो चुकी।

श्री रामचरित मानस एक भक्ति उत्पादक, भक्ति पुष्टक एवं भक्ति वर्धक अनुठा ही ग्रंथ है इसमें केवट प्रसंग देकर तुलसीदासजी ने प्रभु की भक्तवत्सलता, वात्सल्य एवं कृपा की विशेषता ही बताई है एवं सीता के योगक्षेम की व्याख्या की है। केवट सम बड़भागी भयो नहीं कोई। (इस संसार में जिसका कोई तारणहार [illegible] कौन है।)

भक्ति भक्त और भगवंत की जयजय कार के साथ विश्राम किया जाय।

श्री राम जय राम जय जय राम॥

११५२

संकलन २२

२३-५-८१ पं. डीत श्री राधेश्याम जी कृत

(विनीत जी पुस्तिका पृष्ठ ८८ से उद्धृत)

मैं गंगा तट का माझी हूँ, तुम भवसागर के केवट हो
मैं इस गंगा के तीर पे हूँ, प्रभु तुम उस सरिता के तट हो।
मजदूर नहीं मजदूरों से मजदूरी लेते हैं भैया।
मल्लाह नहीं मल्लाहों से मल्लाही लेते हैं भैया।।
प्रभु मेरी उतराई समझते हो तो कारण तुम भी चुका देना
मैंने तुमको है पार किया तुम मुझको पार लगा देना

२३-१-८१।

(रामकिंकर जी की 'अनुरागी केवट' पुस्तक से उद्धृत।

प्रभु जब यहाँ अकेले आते।
तब क्या यों ही खड़े रह जाते॥
वामन सम प्रभु पैर बढ़ाते।
सुरसरि पार तुरत होइ जाते॥
यहाँ साथ लखि मैं सिय नारी।
तेहि ते प्रभु कछु करत बिचारी॥
औरौं कहुँ प्रभुता यहँ दिखाई।
यहि अवसर सो मोहि दुखदाई॥
तब कीन्हा महिमा प्रगटाना।
माँगी नाव न केवट आना॥

(1145)

संकलन 24

25-1-81

से 28-2-81

रामानुज लखनलाल

महाराज मनु राजा दशरथ और रघुपाजी कौशल्या हुई थे कौशल नरेश की पुत्री एवं दशरथ की पटरानी थी इनके अलावा दशरथ के दो विवाहित रानियाँ और थीं। काश्मीर (कैकय) नरेश की पुत्री कैकयी एवं मगध नरेश की पुत्री सुमित्रा। कैकेई के शान्ता नामक एक पुत्री थी जिसे दशरथ ने अपने मित्र अंग नरेश लोमपाद को गोद दे दी थी जो शृंगी ऋषि को ब्याही थी। पुत्र प्राप्ति हेतु दशरथ ने इन्हीं शृंगी ऋषि से यज्ञ कराया जिसके फलस्वरूप अग्नि देव ने खीर देते हुए "यह हवि बाँटि देहु नृप जाई। जथा जोग जेहि भाग बनाई" (बा-१८९) कह कर अपनी रानियों को बाँट देने का आदेश दिया। तदनुसार ने अर्धांश कौसल्या को चौथाई कैकेई को बाकी बचे हुए चतुर्थांश का बराबर दो भाग करके कौशल्या और कैकेई के हाथ से सुमित्रा को दिलवाया। अग्निदेव की दी गयी खीर अंश और इसके भाग किये जाना उपेक्षा हुआ। कौशल्या के श्रीराम कैकेई के भरत एवं सुमित्रा के (कौशल्या द्वारा दी गयी खीर से) लक्ष्मण और (कैकेई द्वारा दी गयी खीर से) शत्रुघ्न

उत्पन्न हुए तदनुसार ही इनको क्रमशः रामानुज और भरतानुज कहा जाता है। पहले राम पीछे भरत और तीसरे दिन लक्ष्मण और शत्रुघ्न हुए। (मा. पी. बालकाण्ड खंड ३ पृष्ठ ५८ तक)। शरीर के व्यवहार के हिसाब से स्वाभाविक भक्ति राम में और शत्रुघ्न की भरत में रही। सत्योपाख्यान अ० २८ में कहा है - कौशल्या की दासी के मुख से उसके मनोरथ सिद्धि के दृश्य की सत्यता जानने के लिये दशरथ कौशल्या के भवन गये तब वहाँ राम के साथ लक्ष्मण शत्रुघ्न को बाल क्रीड़ा करते देखा और कौशल्या-भवन के झरोखे में सुमित्रा भवन में दोनों पुत्रों को माता के पास देखकर बड़ा आश्चर्यचकित हो मोह में पड़कर गुरु को बुलवाया। त्रिकालज्ञ मुनि सब भेद जानते हुए भी राजा को ऐश्वर्य से अनजान रखना चाहते हैं ताकि दशरथ प्रभु की बाललीला का आनन्द लेते रहें। अतः गुरु ने बात बनाई कि यह गंधर्व बाधा है। मैं उपाय कर देता हूँ और अब भविष्य में लक्ष्मण राम के पास रहेंगे और शत्रुघ्न भरत के पास। इससे चारों बालक संतुष्ट रहेंगे। तदनुसार मुनि श्रीजी

शैशवावस्थाएं

नित्य प्रातःकाल लखन को राम के पास और शत्रुहन को भरत के पास पहुंचाने लगीं और चारों भाई संतुष्ट हो खेलने लगे। कारण लखन राम से और रिपुहन भरत से अलग नहीं रह सकते थे। (मा. पी. बालकांड भा. ३ पृष्ठ ५७३) इन तादृशियों में भाइयों का प्रेम प्रकाश हुआ। परब्रह्म के वाक्य स्पष्टीकरण है

"अंशन्ह सहित देह धरि ताता" (१-१५२)
"अंशन्ह सहित मनुज अवतारा।
लेहउँ दिनकर वंश उदारा" (१-१८७)
"बारेहि ते निज हित पति जानी
लछिमन राम चरन रति मानी" (१-१९८)

लक्ष्मण नित्य स्वरूप हैं एवं भागवतों के आचार्य ~~माने गये~~ हैं। जीवों को कल्याण मार्ग पर चलाते हैं भक्ति प्रदान करते हैं। ~~ये~~ निषाद राज गुह के प्रति कही गयी ~~बतलाती है~~। लक्ष्मण गीता कहलाती है। लखन लाल का त्याग रघुवंश में प्रसिद्ध है (मा. पी. अयो. १-३३२) इसीसे राम जी की दाहिनी ओर पूजित होते हैं। नाम करण में गुरु ने "राख्यो लछिमन नाम उदार (१-१९७) जो सर्वस्व का त्याग करता है और अपना

*अंगद हेतु ...... अहंकार (२-७७) (११८)

कहने के लिये कुछ भी नहीं रहता। अतः जो व्यक्ति स्वयं को त्याग देता है वही उद्धार है। श्री राम के वन गमन का ~~...~~ समाचार पा "समाचार जब ...... अधीर" (२-७०) व्याकुल हो दौड़कर राम के पास आए प्रेम से अधीर हो चरण पकड़ लेते हैं अधीर मन में घबड़ा रहे हैं कि कहीं प्रभु साथ नहीं लेंगे। उस समय उनको किसी का ख्याल नहीं। आश्चर्य है कि इस शरीर की भी ममता भी "देह गेह सब सन तृन तोरे" (२-७०)। प्रभु जब साथ ले जाने को अस्वीकार करने लगे तो उस समय जिसका उत्तर कितना मार्मिक है प्रभु के हृदय को भी हिला दिया। *

"मोरे ...... सोई" (२-७२) हार कर प्रभु को कहना पड़ा "मागहु बिदा मातु सन जाई। आवहु बेगि चलहु बन भाई" (२-७३) आज्ञा पाकर उनके आनंद का पारावार नहीं माता के पास पहुंचे "मुदित भए ...... सावन" (२-७३) पर मन

राम और सीता के पास बँधा हुआ है। मनु
रघुनंदन जानकी साथ (२-७३) ऐसे प्रसंग को
सुनकर मातु जब भारी आघात अनुभव सहन
कर दुःखी हो जाती है तब लक्ष्मण व्याकुल हो
जाते हैं कि कहीं माँ बना बनाया खेल बिगाड़ न
दें लखन लखेउ भा अनरथ आजू। येहि सनेह
बस करब अकाजू (२-७३) और समयोचित
शिक्षा देकर आशीष देकर जननी बिदा कर
देती है तब उनके चरण स्पर्श कर तुरत चल
पड़ते हैं मातु चरन ...... नसि (२-७४)
उस समय उनका हृदय बड़ा सशंकित था। प्रश्न
उठता है इतने सशंकित क्यों? कई कारणोंवश
ऐसा है ① कहीं नया विघ्न उपस्थित न हो जाय.
② कहीं जननी ही ममतावश विपरीत आज्ञाधिकार
न दे दे ③ और कोई माता ही बाधा न डाल दे
④ कहीं अर्धांगिनी उर्मिला ही साथ जाने
का हठ तक न कर बैठे और इसी भय से
उर्मिला से मिलने तक नहीं गये। किन्तु उनका
उर्मिला विषयक यह भय निराधार था
कारण उनको तो वनवास दिया ही नहीं

गया था वह तो आपने प्रभु की सेवा करने
आपकी इच्छा है ही जो रहे वो पति साथ
रहने से सेवाव्रत में बाधा आ जाय ऐसी
परिस्थिति उर्मिला कभी खड़ी नहीं
कर सकती थी (५) प्रभु की आज्ञा है
"आप वह भी चल रहे न आई अतः दूर
होने से कहीं प्रभु अकेले ही निकल न पड़ें
आपका लक्ष्मण के कारण प्रभु को देर हो
रही है प्रभु जाने को छटपटा रहे होंगे।

अध्यात्म रामायण युद्ध कांड सर्ग ८
श्लोक ६४ में वर्णन है कि "जिसने बारह वर्ष
तक निद्रा तथा आहार को छोड़ दिया हो
उसी के हाथ से मेघनाद की मृत्यु ब्रह्माजी
ने निश्चय की है। जब से अयोध्या से निकल
कर लक्ष्मण लाल आये हैं तभी से आपकी सेवा
में लगे रहने के कारण इस अवधि में ये
निद्रा आहार को जानते ही नहीं"। मानस
के आधार पर यह है कि शृंगवेरपुर से ही
लक्ष्मण निद्राहीन रहे, प्रभु के शयन करने
के समय वन में उनके अंगरक्षक

लक्ष्मण भला कैसे सो सकते थे।
कालिदास प्रभृति उन्होंने कन्दमूलादि खाने
तत्पश्चात् उनके फलादि भोजन को
उल्लेख तक ही नहीं है। भूख प्यास न लगने
की विद्या ये विश्वामित्र जी से ही पा चुके
हैं। शबरी भी फल मूलादि लाकर प्रभु
को ही देती और प्रभु ही बारम्बार
बखान कर खाते हैं। "कन्द मूल
फल खाहिं (3-34) यहाँ भी लखन के खाने
का उल्लेख नहीं है। एवं मेघनाद के
शुभ्र लक्ष्मण उल्लेख भी प्रवृत्ति सूक्ष्म
रूप से ही संकेत से की है जब मेघनाद
युद्ध में "तेहि प्रसाद सो मरइ न मारा
(६-७४)। ~~मैंने~~ भूखे प्यासे रहकर
इतनी ~~सेवा~~ कठोर कड़ी सेवा प्रभु की
लखनलाल ने वन में चौदह वर्षों तक
लगातार की है यह बेजोड़ सेवा है।।

मानस पीयूष बाल कांड १ पृ २६४ से २६९ तक:—

वशिष्ठ जी ने कहा है कि लक्ष्मण जी की वंदना करते हुए देवताओं ने उन्हें सच्चिदानन्द स्वरूप एवं अनंत शेष के कारण विभु है यानि अंशी कहा है। अंत न था कि जिसका अंत नहीं, अतः नित्य स्वरूप है। यही कारण है कि सती जब राम की परीक्षा लेने गयी थीं प्रभु ने अपना प्रभाव दिखाया था व सती ने अनेक देवताओं के बहुत रूप देखने पर राम लक्ष्मण और सीता का वही रूप सब जगह देखा "सोइ ... ... सीता" (१-५५) राम लक्ष्मण सीता तो अनेक देखीं पर सब जगह स्वरूप एक ही देखा। रामचरित मानस में भी इनको अनेक स्थलों पर अनंत कहा गया है

"क्रोधवंत तब भयउ अनंता। भंजेउ रथ सारथी तुरंता" (६-८९)

"सौमित्र देत प्रचंड सहि अनंत उर लागी सही" (६-८३)

"सानुकूल कोसलपति रहहूँ सो मैत अनंत" (६-१०८)

"रघुपति चरन नाइ सिरु चलेउ तुरंत अनंत" (६-७५)

"जय अनंत जय जगदाधारा। तुम प्रभु देवन्हि निस्तारा" (६-७६)

"जगदाधार अनंत किमि उठइ चले खिसिआइ (६-५४)
इस प्रकार आदि शक्ति सीताजी एवं समस्त देवताओं ने उनको अनन्त कहा है। रावण की शक्ति से लक्ष्मण मूर्छित हो जाते हैं उस समय प्रभु श्रीराम ने उनको स्वरूप बतलाते हुए कहा है "कह रघुबीर समुझु जियँ भ्राता। तुम्ह कृतांत भच्छक सुरत्राता। (६-८४)
अर्थात आपने हृदय में समझिये तुम तो काल का भी भक्षण करने वाले हो, स्वयं अनंत हो तुम्हारा अप्रमेय स्वरूप है अपने इस स्वरूप का बोध करते ही लक्ष्मण उठ बैठे (मा.पी. लंका पृ ~~[illegible]~~ ५३७)। प्रभु ने यहां सुरत्राता कहा- सुरत्राता तो तभी हो सकते जब असुरों का नाश कर सकते- इस विषय में सुंदरकांड में सुग्रीव के प्रति प्रभु पहले ही कह आये हैं " जग महुँ सखा निसाचर जेते। लछिमनु हनइ निमिष महुँ तेते (५-४४)" यानि लक्ष्मणजी का ऐश्वर्य (ईश्वरता) दिखाते हैं। ईश्वर का पलक बंद करना प्रलय है, पलक खोलना सृष्टि की स्थिति है। यानि हमको कुछ भी न करना पड़ेगा।

* श्री सती जी की उपासना भावना हेतु [illegible] के पास [illegible] उन्होंने लखन कुटि के सामने रेखा खींची (11 53) की प्रसिद्ध लक्ष्मण-रेखा पार करने [illegible] "रामानुज लघु रेख खचाई। सोउ नहिं नाघेहु असि मनुसाई॥ (६-३६)

निशचर-नाश के लिये ही लक्ष्मण जी को अवतार है। यह शंका प्रायः उठती है कि जब ऐसी ही बात है तो लक्ष्मण जी को शक्ति लगने मूर्छित क्यों हुए? सो तो यह तो रावण वध के लिये नर-लीला मात्र है "रावन मरन मनुज कर जाचा। प्रभु बिधि बचनु कीन्ह चह साचा॥ (१-४९) तथा जैसे वेश तैसा नाच [illegible] जस काछिय तस चाहिय नाचा। (२-१२७)। लक्ष्मण के लिये मानस के वाल्मीकि मुनि के वचन हैं "जो सहससीसु अहीसु महिधरु लखनु सचराचर धनी। सुरकाज धरि नर राज तनु चले दलन खल निसिचर अनी॥ (१-१२६) त्रिकालदर्शी के उपरोक्त वचन इसकी पुष्टि करते हैं। (मा.पी. तुलसी दा. कि ३०)॥ लक्ष्मण लाल ने मेघनाद पर अपूर्व बाण मारने के पहले "लछिमन मन अस मंत्र दृढ़ावा। एहि पापिहि मैं बहुत खेलावा॥ (६-७६) अभी तक तो खेला रहे थे। वाल्मीकि रामायण युद्धकांड सर्ग ८० श्लोक ३७-३८ में वर्णित है लक्ष्मण ने क्रोध में भरकर श्री राम से कहा "पृथ्वी भर में समस्त राक्षसों के संहार के लिये ब्रह्मास्त्र प्रयोग करूंगा"

तब श्री रामने यह कह कर रोक दिया। एक के कारण
सबका वध तुम्हारे लिये उचित नहीं।

परब्रह्म श्री राम मूल अंशी हैं, इनके
विभिन्न तत्वों के अंश लेकर तीनों भाई
अवतरित हैं। लक्ष्मणजी सहस्त्रशीश वाले
शेष जी के अंशी हैं, जगदाधाररूप विष्णु,
एवं है ब्रह्म और नारायण लक्ष्मणजी ये
तीनों तत्वों को लिये हुए एक रूप है। मुनि
मख नाश करने के लिये अवतरे हैं। ये
लक्ष्मण रूप से परब्रह्म राम की सेवा में
रहे विष्णु रूप से राक्षसों का संहार
करते रहे और शेष के अंशी रूप से
प्रभु शयन समय पहरा देते रहे। परम
धाम यात्रा के समय तीनों रूपों में प्रकट हुए।
लक्ष्मणजी को शेषावतार कहना युक्ति संगत
नहीं प्रतीत होता। ये तो शेष के अंशी हैं।
शेष तो इनका अंश ही है। अंशी ही
अपने अंशों को आज्ञा दे सकता है।
अतः नीचे लिखे उद्धरणों से यह सिद्ध होता
है कि ये शेषादि के अंशी ही हैं। अंशी

(अवतारी) ही अपने अंश (अवतार) को आज्ञा दे सकता है, शासन कर सकता है। विष्णु पुराण में ब्रह्मा जी के वचन है कि लक्ष्मण शेष भी है एवं जगत के कारण भी। (मा. पी. बाल १ पृ २७०)।

"कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं। .... तोरीं" (१-२५३)
"लखन सकोप बचन जे बोले। डगमगानि महि दिग्गज डोले" (१-२५४)
"पुलक गात बोले बचन चरन चापि ब्रह्मांड" (१-२५८)
"दिसि कुंजरहु कमठ अहि कोला।
धरहु धरनि धरि धीर न डोला॥
रामु चहहिं संकर धनु तोरा।
होहु सजग सुनि आयसु मोरा॥ (१-२६०)
"अति सरोष माखे लखनु लखि सुनि सपथ प्रवान्।
सभय लोक सब लोकपति चाहत भभरि भगान्" (२-२३०)
"मनु रिस बिरोधानल साजु। जारइ भुवन चारिदस आजू" (२-२५८)
"सेष सहस्रसीस जग कारन। जो अवतरेउ भूमि भय टारन" (१-१७)
माता सुमित्रा लक्ष्मण स्वरूप के उपर्युक्त ऐश्वर्य एवं तत्त्वों को अच्छी तरह जानती है तभी से इन्हीं प्रकार के उपदेश देते समय एवं निर्णय करते समय कहती है "तुम्हरेहिं भाग रामु बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं" (२-७४)

लक्ष्मण अपने जीवन में ~~कुछ समय के लिये~~ प्रभु श्री राम से अलग नहीं रह सके. श्री राम जानते थे कि मेरे से अलग होते ही यानि यदि मैं हठपूर्वक लक्ष्मण को अयोध्या में अकेला छोड़कर वन चला जाऊंगा तो लक्ष्मण अपने प्राण त्याग देगा इसीलिये लक्ष्मण से ज्यादा हठ न कर उनको साथ ले लिया। वाल्मीक रामायण उत्तरकांड सर्ग १०३ से सर्ग १०६ तक वर्णित है कि ~~[illegible]~~ काल ब्रह्मा का संदेश सुनाने श्री राम के पास आता एवं इस कठोर शर्त पर एकान्त में राम से मिलता है कि यदि वार्ता के बीच में कोई आ जायगा तो उसे मृत्युदंड दिया जायगा। यह शर्त बताकर लक्ष्मण को पहरे पर रखा गया। काल और राम की वार्ता चल ही रही थी कि दुर्वासा राजद्वार पर आ पहुंचे और लक्ष्मण से कहा मुझे शिघ्र ही राम से मिलादो मेरा काम बिगड़ रहा है। लक्ष्मण ने निवेदन किया श्रीराम दूसरे काम में संलग्न हैं, उनसे मिलने के लिये थोड़ी प्रतीक्षा करें। आपका

काम छोड़कर दौड़े। क्रोध से तमतमाकर दुर्वासा बोले
यदि तुरत सूचना नहीं दोगे तो मैं इस राज्य को
नगर को, तुम सब को और ~~तुम्हारी~~ तुम लोगों की
सन्तति को शाप दे दूँगा। लक्ष्मण ने मन में विचार
किया कि मृत्यु वरण करके सब का नाश बचाना
उचित होगा। अतः प्रभु को दुर्वासा का आगमन
निवेदित किया। काल के समक्ष की शर्त को
याद करके राम अति विषाद-ग्रस्त जब हो गये तब
लक्ष्मण जी ने निवेदन किया कि प्रभो आप
प्रतिज्ञा भंग न करें मेरा वध कर डालें। तब
वसिष्ठ जी बोले जो होने वाला है मैंने तपोबल से
पहले ही देख लिया है तुम लक्ष्मण का परित्याग
कर दो। इस पर श्री राम ने लक्ष्मण से कहा
"मैं तुम्हारा परित्याग करता हूँ त्याग और वध
दोनों समान ही हैं। यह सुनकर लक्ष्मण नेत्रों में
आँसू भरकर अपने घर गये बिना ही सरयू किनारे जा
प्राण वायु को रोक कर श्वाँस लेना बंद कर दिया
देवता पुष्प वृष्टि करने लगे। देखते ही देखते
लक्ष्मण आँखों से ओझल होकर इन्द्र के
साथ सशरीर स्वर्ग चले गये वहाँ सबने उनकी पूजा
की।

लक्ष्मण सीताराम के अद्वितीय सेवक थे। वनवास की १४ साल की अवधि में अपनी स्त्री का परित्याग कर, अपने सारे निद्रादि को दूर करा कर १२ वर्ष तक आहार निद्रा का त्याग कर एक कर्मठ विश्वस्त अंगरक्षक की तरह जीवाचार्य लक्ष्मण सीता राम की सेवा करते रहे। पिता ने इन्हें वनवास नहीं दिया था, अपनी ही इच्छा से सेवा हेतु गये थे।

"चापत चरन लखनु उर लाये। सभय सप्रेम परम सचु पाये॥
पुनि पुनि प्रभु कह सोवहु ताता। पौढ़े धरि उर पद जलजाता॥ (२-२२६)
उठे लखनु प्रभु सोवत जानी। कहि सचिवहि सोवन मृदु बानी॥
कछुक दूरि सजि बान सरासन। जागन लगे बैठि बीरासन॥ (२-९०)
सकहु न दुखित देखि मोहि काऊ। बंधु सदा तव मृदुल सुभाऊ॥
मम हित लागि तजेहु पितु माता। सहेहु बिपिन हिम आतप बाता॥" (६-६१)
"प्रभु पाछें लछिमन बीरासन। कटि निषंग कर बान सरासन॥" (६-४१)

ये हमेशा ही प्रभु और सीता जी के चरणों के सेवक बने रहे। ~~इनकी दृष्टि सीता जी~~ वनयात्रा के समय हर क्षण इनका यह ध्यान रहता था कि कहीं अपने पूजित इष्ट देव सीता और राम के चरण चिन्हों पर पैर न पड़ जाय। अतः बड़ी सावधानी पूर्वक बचा कर चलते थे

"सीय राम पद अंक बराएँ। लखन चलहिं मगु दाहिन लाएँ॥"
(२-१२३)

यही नहीं, एक आदर्श सेवक लक्ष्मणजी प्रभु
की अति कठोर आज्ञा का पालन करने में
बिना किसी प्रकार की हिचकिचाहट के तुरन्त
तैयार रहे। यथा। (1) खर दूषण युद्ध में चौदह हजार सेना
के साथ भी राम को अकेले छोड़ कर प्रभु आज्ञा
पालन के लिये सीता को छिपाने के लिये गुफा
में ले गये। (2) सीताजी की अग्नि परीक्षा के समय
अपने हाथों से चिता सजा कर उसमें आग
लगाई। (3) मरते समय खल मारीच-माया-मृग ने
लक्ष्मण का नाम लेकर पुकारा तब सीता माता की
आज्ञा पालन के लिये उन्हें अकेली छोड़ कर
प्रभु की ओर चले गये। (4) वाल्मीकीय रामायण
उत्तरकांड 51 में वर्णन है विष्णु भगवान ने देवासुर
संग्राम में भीड़ित दैत्यों को महर्षि भृगु की
पत्नि ने शरण देने के कारण
सुदर्शन चक्र से भृगु-पत्नि का सिर काट
डाला तब भृगु ने शाप दिया था कि आपको
मनुष्य लोक में जन्म लेना पड़ेगा। तब बहुत
वर्षों तक आपको पत्नि-वियोग का कष्ट
सहना पड़ेगा। इस शाप को पूरा करने के लिये

सीताहरण के कारण अपवाद सुनकर श्री रामने सीता को सदा के लिये निर्वासित (उस समय सीता को रथ पर बैठाकर वन में अकेले छोड़ आने का हृदय विदारक कार्य लक्ष्मण को ही सौंपा। तदनुसार लक्ष्मण ने किया (सर्ग 47) ||

यही नहीं - अपने आराध्य का थोड़ा सा भी अपमान या अपमान सूचक शब्द और वातावरण लक्ष्मण को असह्य था वह अपना व्याकुल हो दिखलाई उठते थे। यथा - (1) वनवास के कारण कैकेई भी अतः कैकेई के प्रति इनका रोष हमेशा ही बना रहा - जब कैकेई चित्रकूट आई एवं जब वहां से अयोध्या के लिये विदा हुई दोनों ही समय लक्ष्मण ने कैकेई को प्रणाम तक नहीं किया एवं वनवास अवधि बीतने पर अवध लौटने पर "लखिमन सब मातन्ह मिलि हरषे आसिष पाइ।

कैकइ कहँ पुनि पुनि मिले मन कर छोभु न जाइ।।" (7-6)

(2) यहां तक कि वनवास देने के कारण पिता के प्रति अपशब्द कहने में नहीं चूके। प्रभु न रोकते तो और कटु कहते

"पुनि कछु लखन कही कटु बानी। प्रभु बरजे बड़ अनुचित जानी।। (2-96)

"लखन कहेउ कछु वचन कठोरा। नहिं राम पुनि मोहि निहोरा।"

(3) धनुष यज्ञ में जब, जनक ने "वीर विहीन मही मैं जानी" (१-२५२) कहा तब लखन प्रभु की उपस्थिति में इन वचनों को प्रभु का अपमान मान कर अप्रसन्न हो गये उनकी भृकुटी तन गयी, होंठ फड़कने लगे नेत्र लाल हो गये प्रभु को प्रणाम कर बोल उठे
"रघुबंसिन्ह महुँ जहँ कोउ होई। तेहिं समाज अस कहइ न कोई॥
कही जनक जसि अनुचित बानी। बिद्यमान रघुकुल मनि जानी॥" (१-२५३)

(4) धनुर्भंग के बाद जब मूर्ख दुष्ट राजा अपनी कमर कस कर गाल बजाने लगे कि कोई सीता को छीन लो और दोनों राजकुमारों को बाँध रक्खो। प्रभु के प्रति ऐसी अपमान सुनकर लखन की आँखें लाल और भौंहे टेढ़ी हो गयीं राजाओं को इस प्रकार बार बार देखने लगे जैसे सिंह [illegible] ~~[illegible]~~ मतवाले हाथियों को मारने के लिये व्यग्र हो उठता है किन्तु श्रीराम के डर से बोल नहीं रहे
"अरुन नयन भृकुटी कुटिल चितवत नृपन्ह सकोप।
मनहुँ मत्त गजगन निरखि सिंघ किसोरहि चोप॥" (१-२६७)

(5) जब परशुराम ने क्रोध में भरकर कहा कि धनुष तोड़ने वाला मेरा शत्रु है तब लक्ष्मण ने मुस्काय कर कहा कि श्री राम ने तो नये के भरोसे देखा था धनुष पुराना।

बाण छूते ही टूट गया तो कन्या हर्षित हो गयी
इसी तरह हमें भी प्रभु राम की निर्भीकता बनकर ही कर्तव्य करके
पास राम का ध्यान करते रहें।
(६) परशुराम जी ने तीर पर जान लेकर ने श्री राम और
दशरथ जी को मौत तक दे डाली एवं लक्ष्मण की भौंहें
चढ़ गयीं और क्रोधित धनुष की ओर गयी तब
श्री राम हँस पड़े और बतलाया कि लक्ष्मण शत्रु
हो सकते हैं तो इसके प्रेम का आनन्द ले रहा हूँ तुम
भी इस आनन्द में शामिल हो जाओ। देखो कैसे कैसे
उच्च कोटि के भक्त बन गये हैं जो मेरे चरण धोने के
लिये परिश्रम करने को तैयार हैं। एक बार विवाह
के पहले प्रभु के दोनों चरण निमग्न धोया करते और
विवाह के बाद दोनों चरण नित्य धोते थे जब
उन्होंने देखा कि प्रभु अब केवट से अपने चरण
धुलवाना चाहते हैं तब परशुराम का क्रोध शान्त हो गया।
(७) सुग्रीव को किष्किन्धा का राज्य मिल गया, वर्षा बीत
कर शरद ऋतु आ गयी, सुग्रीव राज्यमद में सीता की
खोज कराने वाली भूल गया अतः उसे सही रास्ते
पर लाने के लिये प्रभु ने क्रोध का अभिनय प्रदर्शन
किया इतने पर ही धनुष बाण लक्ष्मण के

साथ में जा रहे हैं। प्रभु लक्ष्मण को हनुमान को
बहुत अच्छी तरह जानते थे कि वह मेरा
स्वभाव जानते कि मैं नहीं सह सकता अतः
लक्ष्मण रोष को शान्त करने को कह देते हैं।
लक्ष्मण सुग्रीव पर वास्तव में क्रोध नहीं
करना क्योंकि वह मेरा सखा है सिर्फ
ऊपर के ही रोष का प्रदर्शन करना इनका
साथ में आकर लक्ष्मण हनुमान को किष्किन्धा भेजा
"तब अनुजहि समुझावा रघुपति करुना सींव।
भय देखाइ लै आवहु तात सखा सुग्रीव" (४-१८)
[illegible] पिता ने तो राम को ही वनवास दिया था
लक्ष्मण तो अपनी मर्जी से ही प्रभु के साथ वन
गये थे। लक्ष्मण प्रभु के अंश ही तो थे अतः
वनवास की अवधि में जब जब किसी भी
राज्य पाने की आवश्यकता पड़ी तब तब प्रभु
ने अपने प्रतिनिधि रूप लक्ष्मण को ही भेजा।
सुग्रीव का राज्यतिलक कराने के लिये—
"तब कहा अनुजहि समुझाई। राज देहु सुग्रीवहि जाई" (४-११)
सुग्रीव को सीता खोज के लिये बुलाने के लिये
"भय देखाइ लै आवहु तात सखा सुग्रीव" (४-१८)

(1164)

विभीषण को लंका का राज्य तिलक कराने के लिये पिता बचन मैं नगर न आवउँ। आपु सरिस कपि अनुज पठावउँ" (६-१०६)।

दि 11.6.83 से 15.6.83

(८) चित्रकूट में भरत के ससैन्य आगमन का समाचार सुन कर लखन के मन में यह भावना उठी कि भरत की नियत में खराबी हो सकती है

"जौं जियँ होति न कपट कुचाली। केहि सोहाति रथ बाजि गजाली॥" (२-२२८)

तब भरत और शत्रुघ्न दोनों को रन में मारने तक को तैयार हो जाते हैं तब भयभीत हो सब लोकपाल अपने २ लोकों को छोड़ कर भागना चाहते हैं।

"राम निरादर कर फलु पाई। सोवहुँ समर सेज दोउ भाई॥
सभय लोक सब लोकपति चाहत भभरि भगान॥" (२-२३०)

किन्तु तब आकाशवाणी ने लखन को रोका, राम सीता ने लखन का मान किया, प्रभु ने कहा भरत जैसा शुद्ध हृदय भाई नहीं होने का। और प्रभु भरत के प्रेम में मगन हो गये तब जाकर लक्ष्मण शान्त हुए

"लखन राम सियँ सुनि सुर बानी। अति सुखु लहेउ न जाइ बखानी॥"
(२-२३३)

परशुराम - लक्ष्मण संवाद के कारण यह शंका नहीं होनी चाहिये कि लक्ष्मण महर्षि परशुरामजी के प्रति अशिष्ट और उद्दंड व्यवहार कर गये। परशुराम जी भृगुवंशी ब्राह्मण हैं पर ~~स्वधर्म~~ (ब्राह्मण धर्म) त्याग कर पर धर्म (क्षात्रधर्म) में प्रवृत्त हो गये। वीर की ललकार वीर सहन नहीं कर सकता अतः परशुरामजी को वीर की तरह उत्तर देते चले गये सिर्फ जनेऊ से जाना कि ब्राह्मण है

"भृगुसुत समुझि जनेउ बिलोकी। जो कछु कहहु सहउँ रिस रोकी।।
सुर महिसुर हरिजन अरु गाई। हमरे कुल इन्ह पर न सुराई।।"
(1-273)

इसी बात की पुष्टि श्री रामजी भी कर रहे हैं

"औं तुम्ह औतेहु मुनि की नाईं। पद रज सिर सिसु धरत गोसाईं।।"
(1-282)

परशुरामजी ने आपद्धर्म में क्षात्रधर्म धारण किया था अब जब रामावतार हो चुका तब उनको परधर्म छुड़वा कर स्वधर्म में प्रवृत्त करने के लिये ही दोनों भाइयों ने इस प्रकार की बातें कीं। और इसपर भी नहीं "सुनि मृदु गूढ़ वचन रघुपति के। उघरे पटल परसुधर मति के।।" (1-284) स्तुति करके तप करने वन चले गये।

(1166)

महाराज जनक की ललकार धनुष-यज्ञ-भूमि में सुनकर लक्ष्मण के जो सम्पूर्ण वचनों से यह नहीं समझना चाहिये कि लखन सीता से विवाह करना चाहते थे यह शंका उठते ही पूज्य मुनिवर दृष्टिपात करना होगा यथा- (1) जनक की फुलवारी में लक्ष्मण को अपनी मनः स्थिति देखते समय श्री राम के उद्गार एवं भाव "मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहिं सपनेहुँ परनारि न हेरी॥ रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मनु कुपंथ पगु धरहि न काऊ॥" (१-२३१) आदि वचन यह स्पष्ट कर रहे हैं कि श्री राम जानकी को अपनी मानस-पत्नि बना चुके (2) लक्ष्मण श्री राम को पिता सम मानते हैं ~~[illegible]~~ (3) दूसरे दिन प्रातः काल लखन के भाव "हलहिं प्रभु सब भगत तुम्हारो होइहहिं टूटें धनुष सुखारे" (१-२३८) लखन श्री राम के तृतीय सखा थे अतः उनको श्री राम के द्वारा धनुष टूटने से कितना भारी सुख मिलेगा यह हर्ष से कह रहे हैं। (4) पुष्प वाटिका से लौटने पर विश्वामित्र जी के आशीर्वाद "सुफल मनोरथ होहुँ तुम्हारे। रामु लखनु सुनि भए सुखारे॥" (१-२३७) सुनकर लखन लाल भी सुखी होते हैं

(4) इसके शब्दक्रमों पर ध्यान देने से पता चलता है कि उस समय भी लखन गुप्त रूप में individuality प्रभु की शक्ति की ही बता रहे हैं "जौं तुम्हारि अनुसासन पावौं" (१-२५३ पद) अर्थात यदि आप की आज्ञा हो तो मैं इतना सब कुछ कर सकता हूँ, और यह भी "कौतुक करौं बिलोकिअ सोऊ" (१-२५४) और यह सब भी मेरे लिये खेल ही होगा। और आप तो कौतुकी हैं ही आपके लिये तमाशा हो जाय। यहाँ अनुशासन शब्द के शुद्ध अर्थ पर ध्यान दिया जाय। अनुशासन तो अंशी ही अंश को देगा। प्रभु ही सेवक को देंगे। और यह मानी हुई लौकिक सत्य है कि अंश से अंशी की और सेवक से सेव्य की शक्ति ज्यादा अधिक तो होती है। पूर्णतः शपथ ले कर कह रहे हैं प्रभु जब आपकी आज्ञा पाकर आपका यह तुच्छ सेवक इतना सब कर सकता है तो फिर मैं क्यों कहूँ यह धनुष तोड़ना भर आपके लिये कौन सी बात है। तब विश्वामित्र जी धनुष तोड़ने की आज्ञा देते हैं और प्रभु तोड़ते हैं

लखन के केयूर नूपुरों को पहचाना। जिससे प्रभु श्री
राघवजी को महान शक्ति की पहले से पहचान मात्र
ही थी। बड़े भाई श्री राम की चरण-वन्दन जानकी
जी का आभूषण आदि के पहचानने को
बतलाता है। श्री राम और सीता जी दोनों
के पद चिन्हों को पहचानते हुए और उनकी
दासता और सेवा करते चलते थे। (६) उपरोक्त
युग में बड़े भाई के पहले छोटा भाई अपना
विवाह करके अपने कुल की मर्यादा करने की
हेतु ही ऐसे समझता है। अतः यह सोचना
कि लखन सीता से विवाह करना चाहते
सिर्फ बेबुनियादि कल्पना मात्र ही है
वाल्मीकि रामायण किष्किन्धा काण्ड सर्ग ६
श्लोक २२ में वर्णन है सुग्रीव द्वारा उपस्थित
किये गये सीताजी के आभूषणों के बारे लखन
का सहज उत्तर "भैया मैं इन बाजूबन्दों को तो नहीं
जानता और न इन कुंडलों को ही समझ पाता हूँ
कि किसके हैं, परन्तु प्रतिदिन भाभी के चरणों में
प्रणाम करने के कारण मैं इन दोनों नूपुरों को
अवश्य पहचानता हूँ" उपरोक्त तत्व की पुष्टि करते
हैं।

चरण-वन्दना प्रकरण है गोस्वामीजी लक्ष्मणजी की चरण वन्दना करते हुए उनके गुणों का वर्णन करते हैं

"बंदउँ लछिमन पद जलजाता। सीतल सुभग भगत सुखदाता।
रघुपति कीरति बिमल पताका। दंड समान भयउ जस जाका॥" १७

लक्ष्मणजी का शीतल स्वभाव, सुंदर गौर वर्ण शरीर है। सुंदर स्वभाव, दर्शन से भक्तों को सुख देते हैं। इनके चरणों के दर्शन होते ही त्रिताप दूर होकर परमानन्द प्राप्त होता है। लक्ष्मणजी प्रभु के यश को भक्तों के सामने प्रकाश कर उनका हृदय शीतल करते हैं। महाप्रलय ~~काल~~ में सारे जगत के संहार में, जो परिश्रम भगवान को पड़ा वह तब जाता है जब भगवान शेष सज्जा पर सोते हैं। शेषजी लक्ष्मणजी के अंश हैं जब अंश (शेष) में इतनी शीतलता है तब अंशी लक्ष्मणजी की शीतलता का क्या कहना। चौदह वनवास अवधि में लक्ष्मणजी की अनवरत सेवा से प्रभु और सीताजी को कितनी शीतलता और सुख मिला। श्रीरामजी की कीर्ति रूपी विमल पताका में लक्ष्मणजी का यश दंड के समान है। पताका और डंडा दोनों साथ ही रहते हैं इसी तरह दंड रूप लक्ष्मणजी

यश द्वारा ही श्री राम की कीर्ति लताको
फहराती है। राम के साथ लक्ष्मण का
चरित्र मिलते हैं तभी रामायण होती है।
श्री राम की सेवा को ही लखन ने अपना
सब कुछ धर्म माना है। लखन के चरित
निकाल देने पर रामायण में कुछ रह ही
नहीं जाता इसीसे लक्ष्मण जी ने कभी भी
राम का साथ नहीं छोड़ा। जहां कहीं भी
श्री राम की कीर्ति में कटु लगने का मौका
आया वहीं लखन ने अपने ~~[illegible]~~ द्वारा उस
कीर्ति को उन्नत कर दिया। श्री राम का यश
प्रख्यात और प्रकट है किन्तु लक्ष्मण का
यश विचारने पर ही जान पड़ता है। लक्ष्मण
जी में शुद्ध वीर रस सदा परिपूर्ण है और
प्रभु राम के करुणा रस का सहायक है।
लक्ष्मण जी जीवों के आचार्य हैं इनपर श्री राम का
अतिशय वात्सल्य है इसीलिये इनकी उपासना
सदा श्री सीताराम जी की दाहिनी ओर होती है।
(पृ० 117 से आगे)
श्री लक्ष्मण जी की अनुकूलता की प्रबल इच्छा से
तुलसीदास जी के शब्दों में इनके चरण

कामलों में प्रणाम करके निवेदन करते हैं

"सेवक सदन स्वामि आगमनु। मंगल मूल अमंगल दमनू॥ सदपि उचित जनु बोलि सप्रीती। पठइअ काज नाथ असि नीती॥ (?)

"सोच सहज सकीय जाग कारने जो प्रभु वरते उ मुनिमन टारन सकसे सानुकूल रह मोदर। कृपासिंधु सौ मिलि बुलाकरे।
(१-२७)

श्री राम जय राम जय जय राम ॥

*(१।१७० से आगे)

जनक के पुरवासी भक्त जन रूपी रस्सी से बंधे हुए बछड़ों के समान हैं जो श्री रामजी के दर्शन मिलाबी हैं। उनको तृप्त कराने की इच्छा जीवों के आचार्य श्री लक्ष्मण जी के हृदय में उमड़ी जान कर प्रभु ने गुरु विश्वामित्र जी से निवेदन किया। "लखन हृदय लालसा विशेषी। जाइ जनकपुर आइअ देखी॥ प्रभु भय बहुरि मुनिहि सकुचाहीं। प्रगट न कहहिं मनहिं मुसुकाहीं॥ राम अनुज मन की गति जानी। भगत बछलता हिय हुलसानी॥ नाथ लखनु पुरु देखन चहहीं। प्रभु सकोच डर प्रगट न कहहीं॥ जौं राउर आयसु मैं पावौं। नगर देखाइ तुरत लै आवौं॥ (१-२१८)

त्रिकालज्ञ मुनि सब रहस्य जानते और भगवान के भक्तों की इच्छा पूरी होने जा रही है विचार कर कहते हैं

जाइ देखि आवहु नगरु सुखनिधान दोउ भाइ।
करहु सुफल सब के नयन सुंदर बदन देखाइ॥
(१-२१८)

इस तरह प्रसंग का विधान करके भक्तों की इच्छा पूर्ति लक्ष्मणजी को कर दी जाती है... -पृ० 170 से 180

(355)

10/४/८१
२०/४/८१

साध पुरना

छमा करना प्रभो, मेरा बालपना।
चहता रहता, अरि पर भीरु उठाना॥१

बन न पड़ी प्रभो, कभी कुछ भी साधना।
पर देखना चाहूँ, तेरा मुखड़ा सलोना॥२

पड़ा रहना चाहूँ, तेरे मृदुल चरना।
अन्त समय, राम राम राम रटे रसना॥३

सम्मुख खड़े हो, कौशल्या का प्रिय ललना
कर मम गहे, बैठाकर सुखद कर गमना॥४

द्वार आया, कर कर भरोसा तव करुणा।
जनरञ्जन!, कृपाकर, सँकरे साध पुरना॥५

(1175)

(356)

२५/५/८१ सुप्रभात साधन

सुप्रभात साधन सहते होते हैं।
प्रभो प्रियतम प्यारे
कुछ भि सुकरन, न साधन मेरे ॥१

प्रकाश दयाल स्वभाव तेरे।
सुख उपायों निरन्तर द्वार तेरे ॥२

प्रभु समय रचना समझ में मेरे।
बाँधे रखना मन पग तेरे ॥३

मन हिय हैं करुणामय करतार तेरे।
राम राम रटना रखना है ॥४

सस्मित उपवनों मूल कसूर मेरे।
पूरना उपमान लेकर करे ॥५

4/5/81

अबलों के बल साधन पग तेरे।
असहायों के आश्रय पग तेरे।।

अधम उधारन बिरद पग तेरे।
किये अगनित पतित पावन पग तेरे।।

क्रिया-साधन न पाया पग तेरे।
कुधर्मि साधन न, न सुकृत मेरे।।

किमि पाऊँ विश्व-वन्द्य पग तेरे।
तड़पूँ पाने तारक पग तेरे।।

सिर्फ तव कृपा बकसे पग तेरे।।
रख सँकरें हिये सुखद पग तेरे
उर

२९५।८१

उदर भरै लव टूके,
मँगतो रीतो न जाय।
राघव किरपा करना,
कर उपनय करतर न जाय॥
रामराम, रामराम राम,
रसना रट न जाय।
अंत समय जब संकर
तव चरनन सरन पाय॥

(359)

3|5|81

राघव कृपाल कहो सब कैसे।
पतित पावन श्रुति सँत गाते।। १

परस पाहन पावन जो करते।
धनु भंजि जनक सन्ताप हरते।। २

कृपा करन पितु मातु भवन तजते।
प्रिया अनुज सह वन कष्ट सहते।। ३

वन वन फिर फिर प्रियजन खोजते।
कुटि कुटि जा जा उन्हें तोसते।। ४

कहीं चरन धुलवा निहोरते।
कहीं जूठे बेर रुच रुच खाते।। ५

कहीं पाचैं धाय ग्रास कुरते।
स्वकर क्रियाकर गीधा तारसे। ६

सकूंठ विभीसन चत्र बकसते।
संकरं सिस (उर) सौ जग प्रभु धारदै॥ ७

(संकलन संख्या २५)

मरसाबुज शास्त्रुहन

19/5/81 परब्रह्म मर्यादा पुरुषोत्तम की तरह अपने अंशों सहित इस धरा पर अवतरित हुए - अवश्य ही किसी विशेष उद्देश्य पूर्ति के लिये ही ऐसा किये। धर्म की हानि होने पर अत्याचारी अधार्मिक तत्वों को नाश करके धर्म की संस्थापना ही तो यह उद्देश्य रहा है। एक कुचक्र और आगे - इतना ही नहीं - श्रुतियों वर्णित धर्म के लौकिक तत्वों को पुरातनकार्य रूप में परिणत करके उदाहरण सम्मुख के लिये आचरणों द्वारा जनसाधारण ही नहीं ऋषियों तक को धर्म के तत्वों को समझाया। कार्यरूप में परिणत करने का ही सबसे श्रेष्ठ तरीका अपनाया प्रभु ने इस अवतार में कारण महापुरुषों द्वारा किये गये कर्मों का ही तो जनसाधारण अनुकरण करते आये हैं।

(11४0)

विश्व के प्राणनन्द दाता हैं श्री राम, जो इस
पोषण करते हैं श्री भरत, शत्रुओं के नाश
करते हैं श्री शत्रुघ्न कुमार एवं विश्व के
कारण एवं धारण करते हैं लक्ष्मण लाल
अर्थात विश्व के उपकारार्थ हैं यह
चतुर्व्यूह अवतार। इस नर चरित्र में
श्रुति स्मृति में वर्णित सामान्य धर्म को
व्यवहारिक रूप में प्रस्तुत किया स्वयं श्री
राम ने। भगवान की सेवा व्रत का नमूना
समाज के सामने रखा लक्ष्मण ने
आजीवन सभी परिस्थितियों में यथावत्
साथ साथ रहकर सभी प्रकार की सेवा करके
अपने जीवन की बलि-चढ़ाने में भी
तनिक भी हिचकिचाहट नहीं की। श्री राम और
लक्ष्मण ने १४ वर्ष तक वन प्रान्त में भटक कर
किष्किन्धा और लंका की सीमाओं में
जाकर वहाँ के अधार्मिक अत्याचारी
तत्वों का नाश करके वहाँ मित्र राजाओं
की स्थापना करके अन्तर्राष्ट्रीय
गुत्थियों को सुलझाते रहे।

इसी प्रकार भरत ने आज्ञा पालन में साधु
सन्तों के आदर्श का अनुसरण कर पालन
करते हुए प्रभु की आज्ञा रूपी धर्म का
मर्म आचरण करते हुए श्रुतियों के
तात्पर्य को समझने में ऋषि मुनियों तक
की सहायता की जो भरद्वाज और वसिष्ठ
जी के कथनों से स्पष्ट है। अयोध्या के
समीप नन्दी ग्राम में प्रभु पादुका से आज्ञा
ले लेकर शासन करते रहे पर अयोध्या में नहीं
जाते अतः अयोध्या की सारी देख रेख
सार संभाल। महल, माताओं, राजधानी से लेकर
कोषागार शत्रुघ्न कुमार को भरत
के आदेशानुसार करना पड़ा १४ वर्षों की
अनुपस्थिति तक। इस प्रकार भरत जी माता
की सेवा, गुरु के ~~सेवा~~ अयोध्यावासी सभी
भक्तों की सेवा करते हुए शत्रुघ्न कुमार ने
भागवत-सेवा के महत्व को अपने प्रजा
आदि समाज को समझाया। और भरत
और शत्रुघ्न ने अग्रज की व्यवस्था
को सुचारु रूप से कर अन्तर्राष्ट्रीय

मनुष्यों को सुलभ नहीं है पुरी प्रदायनी
को। वे कैकेयी के वरदान हैं। लिए दशरथ
का राम का वनवास मांगा है राम को लिये
निष्कासन ही मांगा ताकि किष्किंधा और लंका में
मित्र राज्यों की स्थापना करके लौटें। तब तक
अयोध्या की राज्य-व्यवस्था भरत
सुचारू रूप से चालू रखें और इनका ही
ऐसा है।

बाल्यावस्था से ही शत्रुघ्न भरत के ही
साथ रहे, ननिहाल में भी साथ ही थे और
लौटे भी उनके साथ ही "भैंरउ बहुरि
लखन लघु भाई (२-१९५)। शत्रुघ्न को
प्रजा ने जब भरत वन के लिये प्रस्थान कर
रहे थे तब भी ये उनके साथ पैदल ही
रहे हैं। माता कौशल्या के आग्रह पर दोनों
भाई रथ पर सवार होते हैं "फिर धरि.....
होउ भाई" (२-२८८)। "सुजनेहु पुर दे
हुरतेव ...... दोउ भाई..." "आइहि सौंपि
आगु सेवकाई" (२-२९५)।

प्रयाग के बाद साथ राज समाज आगे आगे चल रहा है सब के पीछे गुरु के साथ भरत और शत्रुघ्न पैदल ही जा रहे है "साथ निषादनाथु दोउ भाई" सोहहि साथें दोउ बन्धु पयादें (2-224)" इस सब सानुज भरतहि देखें (2-223)।

चित्रकूट को देखने से ही प्रणाम करते हैं "करत प्रनाम चले दोउ भाई" (2-236) चित्रकूट में भी साथ ही पहुँचते हैं प्रभु के समीप साथ ही पहुँचते हैं "सानुज सखा समेत मगन मन" (2-240) "मिलि सपेम रिपुसूदनहि" (2-241)। अयोध्या लौटने के पूर्व चित्रकूट परिक्रमा में भी भरत के साथ ही थे "नित्य निरखहि भरत दोउ भाई" (2-311)।

शत्रुघ्न भरत की आज्ञा का अक्षरशः पालन करते थे एवं प्रभु श्री राम के कितने बड़े भक्त थे इसका उज्ज्वल उदाहरण तब मिलता है जब इनके सामने मंथरा पहुँची। जिन की भावना ते कैकेई के पास

अत्यन्त प्रफुल्लित मुद्रा में कह रही थी
अवसर भरत जी कैकेई को फटकारते समय
थे अतः शत्रुघ्न का क्रोध उबल रहा था
रहा था, भरत-जननी को तो कुछ कह नहीं
सके थे मन्थरा ही सारे अनर्थों की मूल
है अतः उसे देख से ही शत्रुघ्न की
क्रोधाग्नि में आहुति सी पड़
गयी फिर क्या था उसकी कुबड़ पर
कस कर लात मारा जिससे उसका कुबड़
टूट गया, सिर फट गया, दाँत टूट
गये और मुँह से खून बहने लगा। फिर
भी उसका झोंटा पकड़ कर घसीटने
लगे* कैकेयी ~~[illegible]~~ उसे छुड़वाना
चाहा कैकेयी को भी फटकार तब कैकेयी
भरत के पास गयी और सती होने के
कारण भरत ने उसे छुड़वा दिया
(वाल्मीकि रामायण से उद्धृत)।

*भरत ने दया करके छुड़वा दिये।
"भरत दयानिधि दीन्हि छुड़ाई" (रामचरित)
अयोध्याकाण्ड श्री तुलसी कृत मानस।।

इसके सिवाय श्री रामचरित मानस में शत्रुहन कुमार का उल्लेख कुछेक स्थलों पर और आया है:-

(१) नामकरण प्रसंग में - "जाके सुमिरन ... प्रकासा" (१-१९७) इनके स्मरण मात्र से शत्रु का नाश होता है।

(२) चित्रकूट में मिलन प्रसंग में -
"मिलि सपेम रिपुसूदनहि ... राम" (२-२४१)
"भेंटेउ लखन ललकि लघु भाई" (२-२४२)
"सिय समीप राखे रिपुदवनू" (२-२४३)

(३) रावण वध करके अयोध्या लौटने के प्रसंग में:-
"पुनि प्रभु हरषि सत्रुहन भेंटे हृदय लगाइ" (७-५)
"भरतानुज लछिमन पुनि भेंटे" (७-६)
"कीन्हि दंडवत तीनिउ भाई" (७-३३)
"[illegible] प्रभु सेवहिं सुख भाई" (७-५०)

(४) जब स्वामी श्री राम ही सिर पर जटा धारण किये रहे तब इनको यानि तीनों छोटे भाइयों को भी जटा धारण करना पूरी १४ साल की अवधि में अनिवार्य ही था। अयोध्या लौटने पर सबसे मिल लेने के बाद प्रभु तीनों की जटा करवाते हैं "अन्हवाए प्रभु तीनिउ भाई" (७-११)

संत कवि गोस्वामी तुलसीदास जी
ने श्री रामचरित मानस में प्रभु श्री राम
के चरित्र का ही बखान किया है जैसा
कि ग्रंथ के नाम से भी स्पष्ट हो
जाता है और वही चरित जो जन्म से
विवाह पर्यन्त एवं तदुपरान्त अपहृता-
-सीता मुक्ति सुलझाने के लिये
लंका विजय तक है और बाद
अयोध्या लौट कर राज्याभिषेक
तक का विशद वर्णन करता है।
चित्रकूट तक भरत का राम को लौटाने
के लिये जाने का वर्णन विशद रूप में
है। ~~~~ वहाँ तक तो भरत चरित
आया ~~~~ अयोध्याकाण्ड में
वर्णित है। चित्रकूट को श्री राम भरत को
अपनत्व की लाट सम्हाल पुनी लौटते सौंप
कर लंका की प्रस्थान करते हैं और भरत
अयोध्या की ओर। ~~~~ भरत चरित
भी यहीं तक वर्णित है। लक्ष्मण सब
जगह श्री राम के साथ रह कर उनकी

सेवा करते रहे। अतः लखनलाल के
चरित्र की झाँकी बहुत प्रचुर मात्रा
में उपलब्ध है। भरत की झाँकी
चित्रकूट तक एवं अयोध्या लौटे
कर राज्यादेश पालन प्रारम्भ तक है
किन्तु अयोध्या के १४ वर्ष की
अवधि के प्रबन्ध प्रायः नहीं है
एवं श्रीराम के राज्याभिषेक
के बाद तुलसीदास जी मौन हो जाते
है। शत्रुघ्न भरत के अनुगामी
रहे अतः श्रीरामचरित मानस में
सिर्फ शत्रुघ्न कुमार के चरित का
बखान सिर्फ भरत अनुगामी तक
ही है यद्यपि वन्दना प्रकरण में
तुलसीदास जी शत्रुघ्न कुमार की
वन्दना सिर्फ तीन ही शब्दों में
करते हैं "रिपुसूदन पद कमल
नमामी। सूर सुसील भरत अनुगामी"
(१-१७)। बाल्मिकि जी ने श्रीराम के
अनुजों सहित स्वधाम साकेत

यात्रा तक का वर्णन किया है। अतः यहाँ शत्रुघ्न चरित को लिखा जाता है। यथा:-

शत्रुघ्न भरत को प्राणों से भी अधिक प्रिय थे और वे भी भरत को सदा प्राणों अधिक मानते थे (वाल्मी. बाल. सर्ग १८ श्लोक ३३)

पिता के मृत्यु-संवाद जब भरत शोक में डूब गये उस समय शत्रुघ्न मूर्छित हो गये एवं उन्मत्त की भाँति विलाप करने लगे (वाल्मी. अयो. सर्ग ७७)।

शृंगवेरपुर में गुह के मुख से श्रीराम का जटाधारण सुन कर भरत जब मूर्छित हो गये तब उन्हें हृदय से लगाकर ज़ोर ज़ोर से रोने लगे और देह की सुध बुध खो दी (वाल्मी. अयो. सर्ग ८७)।

ऋषियों के मुख से लवणासुर का अत्याचार सुन कर उसे मरवा डालने का आश्वासन श्री राम ने ऋषियों को दिया। जब श्रीराम ने पूछा तब शत्रुघ्न ने

~~राक्षस को मारने की अपनी इच्छा प्रगट की। श्री राम ने इनकी वीरता की प्रशंसा करते हुए~~

यह विचार कर कि प्रभु की मैं अब तक कुछ भी सेवा नहीं कर सका हूँ शत्रुघ्न कुमार ने उनसे निवेदन कर कहा कि यह सेवा इस जन को प्राप्त हो। तब उनकी श्रद्धा एवं नूतन नगर निर्माण की लालसा। लक्षित करते हुए उन्होंने मधुपुरी (मथुरा) के राज्य के पद पर श्री राम ने उनका राज्याभिषेक करा कर कूच करने की आज्ञा दे दी एवं एक अमोघ बाण उन्हें देते हुए बतलाया कि इसी बाण से उसका वध होगा। किन्तु सावधान कर दिया कि उसके पास शिवजी का दिया हुआ एक त्रिशूल है जिसकी वह नित्य पूजा करता है जब तक उसके पास वह शूल रहेगा वह अवध्य एवं उससे युद्ध करने वाला भस्म हो जायगा। अतः जब वह बाहर जाय उसके पीछे उसके द्वार को रोक लेना ताकि

उसके हाथ में कुछ शेष नहीं है इसके
शत्रुओं लेने की कोई उपाय भी नहीं
रह जाय। गृहस्थाश्रम की सम्पत्ति का कुछ कर्म
समाप्त हो चुका उसके नाश का समय है। यहाँ
से दुर्भिक्षों के पीछे पीछे होता जाय
लेकिन गृहस्थ वस्तु नीति से सेना गंगा जी
को पार कर जायें। गंगा तट पर सारी सेना
को ठहराकर तुम धनुष बाण लेकर रथ को
हो पूरी सेना आनन्दित होकर आगे जाना।
लेकिन किसी प्रकार भी उसे पता नहीं
चल सके कि तुम उससे युद्ध करने जा
रहे हो। यह कहकर चार हजार घोड़े, दो
हजार रथ, सौ हाथी एवं दस लाख रुपये
भी दे दी। माता ने सेना के प्रत्येक पड़ाव
का स्थान निश्चित शत्रुघ्न जी को
बता भी दिया एवं एक मास भीतर
ही ठहर कर ज्येष्ठ भ्राताओं माताओं
एवं गुरु वशिष्ठ जी को प्रणाम कर
चल पड़े। तीसरे दिन वाल्मीकि आश्रम
पहुंचे उसी रात में सीता जी ने कुश और

लव को जन्म दिया। सीताजी से मिलकर
प्रातः वहाँ से चल पड़े। कई रातें मार्ग में
रुकने का उद्देश्य नहीं था। सात दिन
चलकर यमुना तट पर पहुँचकर
च्यवन मुनि के आश्रम में ठहरे। वहाँ
च्यवन मुनि से सारी जानकारी प्राप्त कर
ली। प्रभातकाल में जब राक्षस मनुष्य
पदार्थ एवं भोजन संग्रह की इच्छा से
अपने नगर से बाहर निकला तब शत्रुघ्न
यमुना पार करके मधुपुरी के द्वार पर
खड़े हो गये। मध्याह्न राक्षस के लौटने पर
शत्रुघ्न ने कहा मैं तेरे साथ द्वन्द्व युद्ध चाहता
हूँ। राक्षस ने अपने अस्त्र से सुसज्जित होने
का अवसर माँगा पर शत्रुघ्न ने मौका
नहीं दिया। घनघोर युद्ध के बाद शत्रुघ्न
कुमार ने प्रभु द्वारा दिया वह प्रलयंकारी
बाण चलाया। बाण राक्षस का वध
करके शत्रुघ्न के पास लौट आया। तुरंत
ही वह शूल भी शिवजी के पास चला गया।
तदुपरान्त देवगण उनकी प्रशंसा करते हुए

वरदान मांगने को कहा तब उन्होंने कहा
मधुपुरी मनोहर राजधानी के रूप में बस
जाये। मधुपुरी में बारह वर्ष रहकर शत्रुघ्न
प्रभु का दर्शन करने के लिये अयोध्या
के लिये प्रस्थान किया। मार्ग में महर्षि
वाल्मीकि के आश्रम पर ठहरे वहां
कुश लव आप श्रीराम का राम चरित सुनकर
लम्बी सांस खींचते हुए अचेत हो गये।
प्रातः महर्षि से विदा ले प्रभु के चरणों में
पहुंच कर सारी घटनायें निवेदन कीं और
कहा अब मैं आप से दूर नहीं रह सकूंगा मुझ
पर कृपा करें। प्रभु ने कहा यहां सात दिन
ठहर कर मधुपुरी चले जाओ क्योंकि प्रजा का
पालन राजा का प्रमुख धर्म है। तदनुसार
वहां सात दिन रहकर मधुपुरी के लिये
प्रस्थान कर गये। इसका विशद वर्णन
वाल्मीकीय रामायण उत्तरकाण्ड सर्ग
६२ से ७२ तक है।

श्रीराम के अश्वमेध यज्ञ में अश्व की रक्षा
का भार लक्ष्मण को एवं अन्य राजाओं

के पश्चात् इस प्रकार का भार भरत और शत्रुघ्न को दिया गया था (वाल्मी.-उत्तरकाण्ड सर्ग ९७)। सीताजी के पृथ्वी में समा जाने के बाद भी श्री राम ने अपने को अकेला देख यज्ञ किये (सर्ग ९९)।

परमधाम यात्रा के पूर्व श्री राम ने दूत भेजकर शत्रुघ्न को बुलाया। सन्देश पाकर शत्रुघ्न अपने दोनों पुत्रों का राज्याभिषेक करके अयोध्या के लिये तुरन्त प्रस्थान किया एवं वहाँ पहुँच कर श्री राम के साथ परमधाम जाने की आज्ञा माँगी एवं प्रभु ने आज्ञा दे दी (सर्ग १०८)। श्री राम भाइयों सहित वैष्णव तेज में प्रवेश कर गये (सर्ग ११०)॥

अब अन्य ग्रंथों को देखा जाय -

शूर की शोभा शील है और शील की प्राप्ति सेवकाई से है अतः तुलसीदासजी शूर सुशील कहकर अति अनुगामी कहते हैं (मा.पी. बाल १९१ २७)

पद्मपुराण पातालखण्ड में कथा है कि श्रीराम के अश्वमेध यज्ञ में पशु-रक्षक शत्रुघ्न धीर वीर महादेवजी से युद्ध किया था - यह इनकी वीरता का एक उदाहरण है [पद्म. पाता. १९ २१]

"पुनि सिख दीन्हि बोले लघु भाई।
सौंपी सकल मातु सेवकाई॥ (२-३२३)

भरत जी नंदीग्राम में रहे और सारी प्रजा, सेना, एवं माताओं और अवध प्रियजनों की सारी ही सार सम्हाल। शत्रुघ्न कुमार को ही करनी थी। ये तो ही सो प्रभु के भक्त थे एवं उनके वियोग में अत्यन्त ही दुखित थे

"रहा एक दिन अवधि कर अति आरत पुर लोग।
जहँ तहँ सोचहिं नारि नर कृस तन राम बियोग॥ (७-१)

ऐसे दुखित समाज को मानसिक शान्ति देना भी उन लोगों की सेवा का एक महत्वपूर्ण अंग था। अपने इसके लिये शत्रुघ्न एवं देवी श्रुतकीर्ति को अपने चेहरों पर कृत्रिम प्रसन्नता। रखना पड़ता था होगा कि उनके स्वयं के

हृदय में ~~श्री~~ श्री सीतारामजी
वियोग जनित भीषण ज्वालामुखी
दावानल से दग्ध था। आठों पहर अत्यधिक
रहता था। किन्तु सभी की प्रसन्नता के लिये
वेदना को छिपाने के लिये आहार, वस्त्र
आभूषण एवं अंगराग लगाकर
उल्लास प्रदर्शित करना पड़ता था।
मुख पर मुस्कान रखनी पड़ती थी
यह क्रम अपने कक्ष के बाहर निकलते
ही उनको रखना पड़ता था। अतः इनसे
कहा करते कुमार रंगसदन में प्रवेश करते ही
ऐसा लगता है मानो शरीर जल रहा है किन्तु
कुमार के पास तो उपरोक्त कृत्रिम प्रसन्नता
के अभाव का कोई उपाय नहीं था। दोनों की संतोष
प्रसन्नता के चौदह वर्षों तक इतनी
कृत्रिम प्रसन्नता एवं अतुलनीय आत्म
बलिदान था। आन्तरिक दावानल को
दबाये रखकर ऊपर से हिम शीतल
रहने की शक्ति इनके आत्मबल का
परिचय देती है

श्री राम इनका हमेशा ख्याल करते। उन्हें इसे कुछ भी मिलता प्रसाद इनको ही भेज देते यहाँ तक कि श्री रा- निर्माल्य तो भी इनको देते।

ये सबसे छोटे थे अतः तीनों भाइयों के स्नेह भाजन थे, पुरवासियों की सेवा का सौभाग्य इन्हें प्राप्त हुआ।

लखन का इनके प्रति प्रेम की प्रगाढ़ता तुलसीदास जी ने चित्रकूट में प्रसंग मिलन वर्णन में 'लखाकि' शब्द देकर व्यक्त की है।

"भेंटेउ लखन ललकि लघु भाई"
(२-२४२)

(360)

२०/५/८१ तेरी वस्तु तुझको ही अर्पित है। टेक

साधन तेरा दिया हुआ है तो।
इस जन का तन मन धन है जो॥१

सदा पाला पोसा तू इसे जो।
अब समय फिर सम्हाल लेना तो॥२

रसना राम राम राम रटा है।
ध्यान तव चरनन में अटका है॥३

दृग तव स्यामल माधुरि पीते हैं।
तेरे कर संस्कार कर धरे हैं ॥४

तन धुम प्रभु पद पहुँचता है।
अब वैसे हरिद्वार गंगा हुआ है॥५

२५/५/८१ राम जप, राम जपे, तर जायगा। टेक

राम राम रसना बस जायगा।
तो राम भी हिये बस जायगा॥१

जब हिरामन तोता उड़ जायगा।
तब धन भवन प्रियजन छूट जायगा॥२

साथ तेरे कुछ भी
कुछ भी तेरे साथ न जायगा।
पंछी अकेला ही जायगा॥३

अन्त उचारा राम काम आयगा।
यह राम, राम पास पहुँचायगा॥४

राम जपे, जनम सुधर जायगा।
राम चरनन सरन पा जायगा॥५

(1199)

सँकलन सै २६

२१/३/८१

① 'दादू' करता हम नहीं,
करता और कोय।
करता है सो करेगा,
तू जिन करता होय।।

② भावी बड़ी बलवान होती है, उसे जिस समय जिस स्थान में जो काम जब कराना होता है उस से उसी स्थान में वही काम उसी समय करा लेती है।।

③ तेरे मन कुछ और है,
विधना के मन कुछ और।

④ सोच न हरई जो रचई विधाता
तुम्ह तन मिटहीं कि विधि के अंक। (मानस
१-६७)

(1200)

(क्र०/लेख सं 27)

2/6/81 जय जयकार

राजा महाराजाओं एवं लक्ष्मीपतियों के कृपा अभिलाषी याचक भाटप्रवृत्ति उनका अभिवादन करके उनके यशोगान करके अपनी अधीनस्थता जताते हैं एवं जयजयकार करके उनकी विजय एवं समृद्धि की कामना व्यक्त करते हैं ताकि राजा महाराजा आदि उनपर प्रसन्न होकर कुछ कृपा करें।

सैनिक युद्ध यात्रा समय, युद्धारम्भ के पूर्व एवं चालु युद्ध में अपने अपने पक्ष के राष्ट्रपति, राष्ट्रनायक एवं राष्ट्र की जयजयकार करके अपनी अधीनस्थता एवं वफादारी की घोषणा करते हैं। युद्ध समय इस प्रकार के नारों से उनमें जोश उमड़ पड़ता है यहां तक की अपनी जान तक खेल जाने में भी नहीं हिचकते हैं। यह है इस जय जयकार का प्रभाव।

ठीक इसी प्रकार अनादि काल से ही सगुण उपासक चाहे वह सकाम उपासक हो या निष्काम उपासक अपने इष्ट का आह्वान एवं वन्दना के पश्चात् इष्ट का जय जयकार करते हैं।* इससे उक्त भक्त में आत्मबल का संचार होता है तथा इस जय जयकार द्वारा स्वयं को इष्ट का प्रीतपात्र बनाते हैं। जैसी कामना होती है अपने इष्ट के उसी गुण की विशेषता दुहाई देते हुए उसी प्रकार का यशोगान इस विश्वास और आशा के साथ करते हैं कि इष्ट प्रसन्न होकर उसकी मनोकामना पूरी करेंगे। जिन जिन गुण विशेषों का यशोगान होता है उन गुणों का उद्रेक भी श्री विग्रह में होता पाया जाता है। इस प्रकार जय जयकार एवं यशोगान द्वारा भक्त सफल मनोरथ होता है।

* क्योंकि जय पुरुषार्थ करने से ही होती है अतः अपने इष्ट की जय जयकार करने को विशिष्ट आत्म जयकार करते हैं।

(202)

(362)

16/6/81

राघव! तू सखा प्यारा मेरा। टेक:

जनम जनम का प्रभु तूं मेरा।
क्रीतदास है जन यह तेरा॥१

उद्धार दाता प्रभु है तूं, मेरा।
भिखारी है सकल तेरा॥२

रहे रसना राम, उर पग तेरा।
लगानो पार बेड़ा मेरा॥३

(सं.ले.सं. 28)

16/6/81 राम नाम प्रताप

अज्ञात (उम्र 26 साल) ने कहा

रस्सी आती जाती पत्थर पर गड्ढा कर देती है। पत्थर को यदि नित्य निरंतर अँगूठे से स्पर्श करते रहा जाय तो कोमल अँगूठे का कुछ नहीं बिगड़ता पर पत्थर घिसने लग जाता है ऐसा सार्वजनिक देवालयों में कई बार देखने में आता है

प्रभु का हृदय जितना ही दयालु और कोमल है उतना ही पत्थर से भी कठोर है किन्तु नित्य निरंतर जीभ से राम नाम का उच्चारण करने से जीभ का तो कुछ नहीं बिगड़ता पर प्रभु हृदय की प्रीति जाती है, कोमलता प्रगट हो जाती है यानि प्रभु की कृपा अवश्य हो जाती है।

विश्व के सारे कल्पना किये जा सकने वाले पापों का समूह भी इकट्ठा होने पर भी प्रभु के रामनाम

की अपूर्व-दहन शक्ति की थाह तक
भी नहीं पा सकते - आवश्यकता है
सिर्फ ध्रुव-विश्वास की। यदि सचमुच
ही श्रद्धा जम जाय तो अन्य शास्त्रों
की आवश्यकता नहीं रहती क्योंकि शास्त्र
भी तो यही कहते हैं कि भगवान पर श्रद्धा
करो। अन्य मंत्र तो गोप्य कहे जाते हैं और
इसके लिये पवित्रावस्था हो जाती है पर
महामंत्र के लिये कोई विधि नहीं।
इसका जप तो सब समय, सब स्थान, सारी
अवस्थाओं में, सब के साधने, सब जाति
वर्ण एवं सभी स्त्री पुरुषों के द्वारा
किया जा सकता - और ये उच्चार कर
संकीर्तन करके ये कीर्तन करनेवाला
एवं सुनने वाले सभी प्राणी मात्र पावन
हो जाते हैं - वायुमंडल तक पावन हो
जाता है।

23/8/81

पश्चात्ताप

मनुष्य के द्वारा किये गये कर्म सत् ही या असत् ना छिप सकते हैं ही नहीं सकते। असत् कर्म यानि अनुचित कर्म अथवा पाप कर्म के लिये मनुष्य पश्चात्ताप ही कर सकता है।

पश्चात् + ताप = पश्चात्ताप

अनुचित, अशुद्ध पाप कर्मों को स्मरण करके और हृदय में ताप उत्पन्न (ताप), और दुख होता है वही पश्चात्ताप कहलाता है। पश्चात्ताप की अग्नि में सारे पाप जल कर धराई हो जाते हैं और इस प्रकार पश्चात्ताप हृदय के मल को धो कर हृदय को निर्मल बना देता है। इस प्रकार यह दुष्कर्मों की सर्वोत्तम औषधि है और उस प्राणी को पावन बनाने के लिये रसायन है। संसार में

डूबते हुए पुरुष का यह एक मात्र सहारा है। लेकिन पश्चात्ताप होते ही एक चौथाई पाप तो नष्ट हो जाता है, लोगों के सामने प्रगट कर देने पर आधा पाप नष्ट हो जाता है एवं निन्दक जब उसकी निन्दा करते हैं तब रहा सहा बाकि एक चौथाई पाप नष्ट हो जाता है। ऐसा शास्त्रकार कहते हैं।

पश्चात्ताप करने से, जब पाप साफ हो कर हृदय निर्मल हो जाता है तब प्रभु कृपा करके पतित पावन नाथ चरणों में आश्रय देते हैं प्रभु कहते हैं:-

"निर्मल मन जन सो मोहि पावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा" (पृ.)

पश्चात्ताप ही सच्चा प्रायश्चित है उसके बाद आत्मा की ओर नम्र बन कर प्रभु का निरंतर स्मरण करते रहना चाहिये फिर तो बेड़ा पार हो जाए

है। प्रभु भक्त का एक लक्षण है:-

"सबहि मानप्रद आपु अमानी।
भरत प्रान सम मम ते प्रानी॥"
(७-३८)

(1208)

सुमंत्र (सं० सं० – 30)

२४/८/८१

सुमंत्र जी अवधपति महाराज के महामंत्री थे, राजव्यवस्था इनके माध्यम से दी जाती थी। ये प्रजाजनों का प्रतिनिधित्व करते थे। इतना ही नहीं तथा महाराज दशरथ के विश्वस्त सारथी यानि रथ-चालक भी थे यानि सदैव उनके साथ रहने वाले, सभी परिस्थितियों में उनके उत्तम कोटि के विश्वस्त सलाहकार थे कारण इनकी मंत्रणा सुविचार पूर्वक दी गयी और सदैव सही मार्ग प्रदर्शक थी जैसा कि इनके नाम से ही जाना जाता है यथा – सु + मंत्र = सुमंत्र यानि जिसकी मंत्रणा सु अच्छी हो, सुविचार पूर्वक दी गयी एवं सभी परिस्थितियों में अनुकूल एवं विश्वसनीय हो। यही नहीं दशरथ इनको अपना अंतरंग मित्र मानते थे अतः राज्य

परिवार के सभी सदस्यों तक, इनका यशरथ के साथ सम्मान करते थे और राजमहल के अन्दर महारानियों तक के निजी कोठों तक में भी इनकी सहसमय प्रवेश गति थी।

ये उग्रकीर्ति के राम भक्त थे राम-भक्ति इनके जीवन का प्रभाव अधूरा थी किन्तु विशेषता यह थी की राम भक्ति के साथ ही साथ राष्ट्रीय जीवन के कार्य क्षेत्र में महाराज दशरथ के प्रति इनकी वफादारी प्रधानता ग्रहण कर लेती थी। इनकी राम भक्ति की झांकी - राम के राज्याभिषेक के निषेध एवं उनके वन प्रवेश के समय इनकी मानसिक स्थिति एवं प्रभु के पास से गुह्याश्रम के वापस आने पर इनकी मानसिक विकलता ~~इनकी~~ एवं गुह के श्री राम को निज उर पर पहुंचाकर

वापिस आने तक इनको मूर्छित-
प्राय: प्रस्तुत किया है। यहीं पर इतना
ही इनकी राम-भक्ति की गूढ़ता
दिखलाती है। किन्तु इनके उच्चकोटि
के राम-भक्त होते हुए भी, यद्यपि
अपनी तपस्या दिखा कर राम ने
लक्ष्मण के द्वारा वचन दशरथ को
पूरा करने के लिये इनको स्पष्ट रूप
से मना कर दिया था कि वे महाराज
दशरथ के वफादार मंत्री सच्ची बात
को अपने महाराज से गुप्त नहीं रख
सके और निःसंकोच रूप से प्रकट कर
के महाराज के प्रति अपनी सच्ची
वफादारी का परिचय इन्होंने दे ही
दिया।

रामचरित मानस के निम्नलिखित
उद्धरणों से उपर्युक्त विषयों की
झाँकी मिलती है:-

(1) प्रजा के प्रतिनिधि एवं पुरजन एवं मन्त्रिगण का अध्ययन :-

"पाछिले पहर भूपु नित जागा।
आजु हमहि बड़ अचरजु लागा॥
जाहु सुमंत्र जगावहु जाई।
कीजिअ काजु रजायसु पाई॥" (2-37)
आनहु रामहि बेगि बोलाई।
समाचार तब पूँछेहु आई॥ (2-39)
तब मुनि कहेउ सुमंत्र सन सुनत चलेउ हरषाइ
(1-10)

(2) मंत्री -

"सचिउ सभीत सकइ नहिं पूँछी॥" (2-38)
"राम सचिव सन कहेउ सप्रीती॥" (2-85)
"सचिवँ चलायउ तुरत रथु इत उत खोज दुराइ" (2-85)
"मंत्री बिकल बिलोकि निषादू।" (2-142)

(३) सखा और सारथी :-

"लै रथु सखा तुम्ह जाहू" (२-८१)
"सचिव चलायउ तुरत रथु इत उत खोज दुराई" (२-

(४) राजमहल में अनुभाव गति:-
"जाहु सुमंत्र जगावहु जाई।"
"गए सुमंत्र तब राउर माहीं।"
"गए जेहिं भवन भूप कैकेई।।" (२-३८)
"सहु सुमंत्रहि आवत देखा।" (२-३५)
"पासिन्ह दीख सचिव बिकलाई।
कौसल्या गृह गई लवाई।।
जाइ सुमंत्र दीख कस राजा।" (२-१४८)

(५) राजपरिवार में आदर का स्थान :-

"सुनु सुमंत्र तुम्हहि आवत देखा।
आदरु कीन्ह पिता सम लेखा॥" (२-३५
"तुम्ह सन तात बहुत का कहऊँ।
दिएँ उतरु फिरि पातकु लहऊँ॥ (२-४५)
"तुम्ह पुनि पितु सम अति हित मोरें।
बिनती करउँ तात कर जोरें॥" (२-४६)
"तुम्ह पितु ससुर सरिस हितकारी।
उतरु देउँ फिरि अनुचित भारी॥
आरति बस सनमुख भइउँ बिलगु न मानब तात॥"
(२-४७)

(१२१५)

(घ) राम-भक्त –

"अनुज सहित सिर जटा बनाए।
देखि सुमंत्र नयन जल छाए॥
हृदय दाहु अति बदन मलीना।" (२-९८
"सुनि सुमंत्र सिय सीतलि बानी।
भयउ बिकल जनु फनि मनि हानि॥ (२-९९
"राम लखन सिय पद सिरु नाई।
फिरेउ बनिक जिमि मूर गवाँई॥ (२-९९)
"बरबस राम सुमंत्र पठाए।" (२-१००)
"फिरेउ निषादु प्रभुहि पहुँचाई।
सचिव सहित रथ देखेसि आई॥
मंत्री बिकल बिलोकि निषादू।
कहि न जाइ जस भयउ बिषादू॥
राम राम सिय लखन पुकारी।
परेउ धरनितल ब्याकुल भारी॥" (२-१४२
"धरि धीरजु तब कहइ निषादू।
अब सुमंत्र परिहरहु बिषादू॥
तुम्ह पंडित परमारथ ग्याता।
धरहु धीर लखि बिमुख बिधाता॥

बिबिधि कथा कहि कहि मृदु बानी।
रथ बैठारेउ बरबस आनी।।
सोक सिथिल रथु सकइ न हाँकी।
रघुबर बिरह पीर उर बाँकी।। (2-99)
होहिं घोरहिं घरन मगन बिषादू।।
सोच सुमंत्र बिकल दुख दीना।
धिग जीवन रघुबीर बिहीना।।
रहिहि न अंतहुँ अधम सरीरू।
जसु न लहेउ बिछुरत रघुबीरू।।
भए अजस अघ भाजन प्राना।
कवन हेतु नहिं करत पयाना।।
अहह मंद मनु अवसर चूका।
अजहुँ न हृदय होत दुइ टूका।।
मीजि हाथ सिरु धुनि पछिताई।
मनहुँ कृपन धन रासि गवाँई।।
बिरिद बाँधि बर बीरु कहाई।
चलेउ समर जनु सुभट पराई।। (2-144)
लोचन सजल डीठि भइ थोरी।
सुनइ न श्रवन बिकल मति भोरी।।
सूखइ अधर लागि मुहँ लाटी।

(1216)

जिहि न जाइ उर अवधि कपाटी॥
बिकल भयउ न जाइ निहारी।
मारेसि मनहुँ पिता महतारी॥
हीन गलानि बिपुल मन ब्यापी।
जमपुर पंथ सोच जिमि पापी॥(२·१४५
"देहहिं उत्तरु कौनु मुहु लाई।
आयहुँ कुसल कुँअर पहुँचाई॥(२·४६

(८) महाराज दसरथ के प्रति वफादारी :—

"सकुचि राम निज सपथ देवाई।
लखन सँदेसु कहिअ जनि जाई॥(२·९६)
"लखन कहे कछु बचन कठोरा।
बरजि राम पुनि मोहि निहोरा॥(२·९७

वाल्मीकीय रामायण में वर्णित है इस
प्रकार मिलता है:-
भरत चित्रकूट से वापस सारे
समाज को लेकर अयोध्यापुरी को लौटे।
शत्रुघ्न के साथ जाते समय तब
सुमन्त्र भी शत्रुघ्न के समीप होकर पीछे
पीछे चल रहे थे। उन्हें भी भरत के
समान ही श्री राम के दर्शन की तीव्र
अभिलाषा थी (२-९९-३) यह है इनके
तीव्र राम प्रेम का द्योतक है। तत्पश्चात
राम सुमन्त्र और गुह से मिले। (२-९९-४०)
श्री राम के द्वारा परित्यक्ता सीता जी
को वन में छोड़ने के कारण जब
लक्ष्मण लौट रहे थे तब रथ में सुमन्त्र के
साथ थे अपनी अपार मानसिक पीड़ा का।
वर्णन कर रहे थे तब उन्हें सान्त्वना
देते हुए सुमन्त्र ने कहा कि यह बात
दशरथ के सामने ही जान ली थी।
दुर्वासा ने कहा था कि राम दीर्घ काल
बीतते बीतते सुख को, सीता को, [illegible]

और शत्रुघ्न भी त्याग देंगे – ये बातें महाराज ने तुम लोगों से कहने की मना ही कर दी थी अतः मैंने अभी तक गुप्त ही रखा था। (७-५०-११ वें श्लोक) सुमन्त्र के अत्यन्त आग्रह करने पर सुमन्त्र ने दुर्वासा द्वारा कही गयी विष्णु को भृगु मुनि के शाप की घटना बतायी जिसके कारण राम को सीता का दीर्घ वियोग कष्ट सहना पड़ेगा। (७-५१-४३ से २० तक।) इस प्रकार बहुत सी गुप्त बातों को जानते थे रघुवंश के प्रति वफादार थे। सिर्फ लक्ष्मण के संताप को शांत करने के लिये ही बताना पड़ा था।

सुमन्त्र शब्द का अर्थ इस प्रकार है :- सु + मन्त्र = सुमन्त्र (सु का अत्यन्त ही उत्तम और मंगलकारी मंत्र है यानि 'राम' नाम मंत्र। जिससे बढ़कर कोई मंत्र नहीं जो सदा मंत्र कहा जाता है। * [illegible]

श्री राम जय राम जय जय राम।